S/107

# भारतीय मजदूर संघ

## ही

## क्यों ?

दत्तोपन्त बापूराव ठेंगडी

# भारतीय मजदूर संघ ही क्यों ?

★

लेखक

दत्तोपन्त बापूराव ठेंगड़ी

★

प्रमुख वितरक

राम नरेश सिंह

भारतीय मजदूर संघ, १४/१२ बम्बा रोड, दर्शनपुरवा, कानपुर

प्रकाशक
**राम नरेश सिंह**
**भारतीय मजदूर संघ कार्यालय**
**१४/१२, बम्बा रोड, दर्शनपुरवा कानपुर**

**मूल्य १ रुपया**

मुद्रक
**हरिश्चन्द्र अग्रवाल**
रोहिताश्व प्रिन्टर्स
ऐशबाग रोड, लखनऊ

# दो शब्द

भारत की अपनी स्वतन्त्र वैशिष्ट्यपूर्ण अर्थ नीति है। यह सौभाग्य केवल भारत को ही प्राप्त है कि वह आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर विश्व को शास्त्रीय सामाजिक और आर्थिक सामाज रचना प्रदान कर सका है। परन्तु वर्त्तमान समय के भौतिकवादी मत और दर्शन अभी तक भारत के इस वैचारिक प्रौढ़ता को ससझने में असमर्थ रहे हैं। देश के श्रमिक क्षेत्र में इस विशिष्ट भारतीय दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने की आकांक्षा लेकर ही भारतीय मजदूर संघ का प्रादुर्भाव हुआ है।

दिल्ली से प्रकाशित सुप्रसिद्ध अंग्रेजी साप्ताहिक 'अर्गनायजर' ने छोटे छोटे लेखों के रूप में भारतीय मजदूर संघ की भूमिका पर प्रकाश डालने के लिए यह साहित्य प्रकाशित किया था। उसका संकलन अंग्रेजी की Why Mazdoor Sangh नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ। आज देश भर में मजदूर संघ का कार्य जिस द्रुतगति से बढ़ता जा रहा है उससे इसके सम्बन्ध में जनता में जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता का अनुभव कर उसका हिन्दी संस्करण आज पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। इसका हिन्दी अनुवाद करने का कार्य मेरे मित्र रामनगर, काशी निवासी चौधरी श्री नारायण सिंह ने अत्यन्त परिश्रम और लगन के साथ संपन्न किया है। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

यदि यह पुस्तिका पाठकों में, भारतीय समाज-रचना के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने की उत्कण्ठा जगा सकी तो लेखक को अपने प्रयास पर हार्दिक सन्तोष का अनुभव होगा।

लखनऊ<br>१० मई १९५१

द० बा० ठेंगड़ी

# लेखक का संक्षिप्त परिचय

सदैव कुर्त्ता-धोती ही पहनने वाले मध्यम शरीर यष्टि के श्री ठेंगड़ी को देखकर हर कोई यह अनुमान नहीं कर सकता कि उन्होंने ग्रेजुएट होने के साथ साथ कानून (ला) की परीक्षा भी पास की है। बापू का वर्धा तो विख्यात ही है इस जिले के आरवी गाँव के स्व० बापूराव दाजी ठेंगड़ी एक प्रसिद्ध वकील हो गये हैं। श्री ठेंगड़ी उन्हीं के पुत्र हैं।

अपने घर सन् १९२० के १०नवम्बर को जन्म लेने वाले बालक के प्रति वकील पिता ने जो भी धारणा बनाई हो, परन्तु पढ़-लिखकर उनके मितभाषी पुत्र को छल-प्रपंचयुक्त दुनियादारी और उसके वंचक रास्ते किंचित्‌ऽपि आकर्षित न कर सके; भोगवादी जीवन से पराङ्मुख हो उसने अपना तरुण तन-मन राष्ट्र-सेवा में अर्पित कर दिया।

अखिल भारतीय विद्यार्थी-परिषद के विदर्भ प्रान्तीय अध्यक्ष के रूप में आपने सन् १९५० से १९५१ तक कार्य किया। साथ ही 'इंटुक' के विभिन्न श्रमिक-यूनियनों के उत्तरदायी पदों पर भी आप नियुक्त रहे तथा सन् १९५० से १९५१ के कार्य-काल में वे उसके प्रादेशिक संगठन-मंत्री भी रहे।

इसी बीच (सन १९५०-१९५१) आप 'इंटुक' के अखिल भारतीय जनरल कौंसिलर (प्रतिनिधि) चुने गये। 'मध्य-प्रदेशीय हस्त-

कर्घर-उद्योग-कान्फ्रेंस' के आप ऐडवाइजर (परामर्शदाता) मनोनीत हुए।

समय आगे बढ़ा, आप की कार्य-क्षमता भी बढ़ी और सन् १९५३ आया तो आपने छत्तीसगढ़ रियासत में 'पीपुल्स कान्फ्रेंस' संगठित की तथा १९५३-१९५५ की अवधि में मध्यप्रदेश के शिक्षकों ने आपको अपने मध्य-प्रदेश शिक्षक-संघ का संगठन-मन्त्री मनोनीत किया।

सन् ५४-५५ की अवधि में आप 'अखिल भारतीय रेलवे मेल सर्विस यूनियन' के अध्यक्ष चुने गए। इसी बीच (सन् ५४-५५) आपने 'मध्य-प्रदेशीय नागरिक स्वाधीनता-समिति' नाम्नी संघर्षशील संस्था भी संगठित की।

सन् ९९५९ में 'जीवन-बीमा-निगम' के फील्ड वर्कर्स एसोसियेशन ने आपको अपने अखिल भारतीय सम्मेलन का अध्यक्ष मनोनीत किया।

समय के बढ़ते चरण सन् १९५५ पर आकर रुके, और २३ जुलाई आयी—इसी दिन स्व० लोकमान्य तिलक की पुण्य-जयन्ती थी। विभिन्न श्रमिक-संगठनों में कार्य करते-करते आपको जो अभाव अनुभव हुआ उसकी पूर्त्ति के लिए आपने इस गौरवमयी तिथि पर 'भारतीय मजदूर संघ' की स्थापना कर श्रमिक-क्षेत्र में एक नए इतिहास का श्रीगणेश किया। आपके यशस्वी नेतृत्व में इस भारतीय श्रमिक-संगठन को अखिल भारतीय रूप प्राप्त हुआ और अब भारतीय श्रमिक क्षेत्र की यह एक प्रतिनिधि संस्था बन गई है।

जो जीवन के प्रत्येक क्षण का उपभोग करने का अभ्यासी हो गया है, उसके कर्त्तृत्व का सीमा-बन्धन कौन करेगा? अतः हमें विश्वास है कि देश की माँग पर समर्पित श्री ठेंगड़ी अविश्रान्त जीवन ध्येय-प्राप्ति का यश अर्जित किए बिना विराम न लेगा।

**राम नरेश सिंह**

# अध्यात्मिक अधिष्ठान

भारतीय-संस्कृति ही भारतीय-मजदूर-संघका आदर्शात्मक आधार है। चूँकि मानव-जीवन का प्रत्येक पक्ष संस्कृति में समन्वित होता है, अतः 'संस्कृति' शब्द द्वारा प्रकट होने वाले भावों का पूर्णविबोध अत्यन्त कठिन है। तथापि इसका अर्थ सर्वथा अस्पष्ट भी नहीं है। 'संस्कृति' शब्द द्वारा किसी समाज के जीवन-व्यापी मनोभाव, विचार, वाणी और कर्म के परिणामस्वरूप समष्टि मानस पर पड़ी हुई विशिष्ट छाप का ग्रहण होता है। विश्व-संस्कृति से समानता ही हमारी संस्कृति की विशेषता हे। अस्तु, भारतीयों द्वारा अङ्गीकृत एवं आचरित भारतीय संस्कृति एक प्रकार से विश्व-संस्कृति ही है। मानव-विकास को अग्रेसर करने की संस्कृति की अपनी एक विशेष पद्धति होती है। सामाजिक दशा के नियन्त्रण का इसका अपना अलग विधान होता है। प्रायः विश्व के रङ्गमञ्च पर संस्कृति-विरोधी ऐसे तत्वों का उदय हुआ करता है जो इसके नियमों का उलंघन करते, समाज-विकास के मार्ग में रोड़े अटकाते तथा मानव जाति के पूर्ण विनाश का भय उपस्थित करते हैं। मानव की सुख-शान्ति समृद्धि के हेतु इन 'आसुरी सम्पद्' की शक्तियों का उन्मूलन अनिवार्य है। विभिन्न प्रदेशों एवं काल खण्डों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों एवं संस्थाओं के माध्यम से इन आसुरी-शक्तियों के विरुद्ध संस्कृति का संघर्ष चलता रहा है। पूँजीवाद एवं समष्टिवाद रूपी परस्पर विरोधी परन्तु समानरूपेण मानवता-विरोधी आसुरी-सम्पत् की प्रवृत्तियों के विरुद्ध प्रवर्तित संघर्ष में प्रयुक्त होने वाले एक हथियार के रूप में ही भारतीय-मजदूर-संघ का प्रादुर्भाव हुआ है।

औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् यूरोप में एक प्रकार के शोषण-काल का प्रारम्भ हुआ। हस्तोद्योगों का विलोप होने लगा और मशीन ही उत्पादन का मुख्य साधन हो गई। मशीनों के विशिष्ट उत्पादन प्रणाली के परिणामस्वरूप पूँजीपतियों के हाथ में असीमित आर्थिक अधिकार केन्द्रित हो गये। अपनी आर्थिक शक्ति के बल पर पूँजीपतियों ने राज्य पर असाधारण प्रभाव डालना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप राज्य पूँजीपतियों के अच्छे बुरे सभी प्रकार के लाभार्जन-प्रयासों में सतत् सहायक होने लगा।

मानव सुख के स्थान पर सभी औद्योगिक प्रयासों का एक मात्र लक्ष्य अधिकाधिक लाभार्जन होगया। मशीनों पर काम करने वाले मनुष्य की स्थिति मशीन के पहिये की अपेक्षा कोई अच्छी न रह गई। उत्पादन-साधन के स्वामियों अर्थात् पूँजीपतियों से सर्वथा शोषित होने एवं राज्य से उपेक्षित होने पर श्रमिक वर्ग सर्वथा निराश एवं हतोत्साहित हो गया। इसी आधार पर उस सिद्धान्त का निर्माण हुआ है जिसमें चतुर्दिक की क्रूर परिस्थितियों के विरुद्ध एक मनस्वी दार्शनिक की अत्युग्र एवं असन्तुलित प्रतिक्रिया प्रतिफलित हुई है। इस अर्थ में उक्त सिद्धान्त प्रतिक्रियात्मक ही था। और सामयिक अवस्था के अनुसार इसमें संशोधन की अपेक्षा थी।

मार्क्स एक पाश्चात्य जड़वादी दार्शनिक था। उसकी यह मान्यता थी कि किसी समाज का आर्थिक ढाँचा ही वह मूलाधार है जिस पर उस समाज के वैधानिक, राजनीतिक एवं सामाजिक आदर्शों का निर्माण होता है। मार्क्सवादियों का कहना है कि अर्थ ही किसी भी सामाजिक ढाँचे का आधार होता है। उनके मतानुसार समस्त सामाजिक परिवर्त्तनों एवं राजनीतिक क्रान्तियों के मूलकारणों की खोज उत्पादन एवं विनिमय-प्रणाली के परिवर्त्तनों में करना चाहिए, न कि मनुष्य के मस्तिष्क एवं सनातन सत्य तथा न्याय के अन्तर्दर्शन में। इन कारणों की खोज दर्शनों में नहीं अपितु विभिन्न कालखण्डों की आर्थिक अवस्था

में होनी चाहिए। अस्तु, उनके मतानुसार किसी भी सामाजिक परिवर्त्तन का अर्थ होता हैं समाज के आर्थिक ढाँचे में परिवर्त्तन।

संस्कृति की ओर से यह प्रश्न उठता है कि क्या अर्थ ही सामाजिक परिवर्त्तन का असाधारण कारण है। राजनीति के सदृश अर्थ भी निस्सन्देह उन अनेक साधनों में से एक है जो सामाजिक ढाँचे के परिवर्त्तनों में अपना योगदान करते हैं। किन्तु, क्या यही चरम कारण हैं? क्या अर्थ ही समाज का एक मात्र आधार है? संस्कृति की दृष्टि से ऐसी स्थिति नहीं है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानसिक परिवर्त्तनों के कारण राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्त्तन हुए हैं। समष्टिगत मन की भावनात्मक क्रान्ति के पश्चात् भौतिक जगत में वस्तुगत क्रान्ति हुआ करती है। मानव के विचारों में परिवर्त्तन हुए बिना विकास या क्रान्ति के द्वारा स्थायी भौतिक परिवर्त्तन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अस्तु, मनस्तत्व को ही निर्णायक तत्व माना जायगा, न कि अर्थ को। मनुष्य समाज का मानसिक ढाँचा ही वह मूल आधार है जिसके द्वारा सर्वाङ्गीणरूप से सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक संस्थाओं के अद्भुत निर्मित की व्याख्या की जा सकती है।

अर्थ को मूल कारण नहीं माना जा सकता। क्योंकि अर्थ स्वयं ही अपने नियामक मानसिक अवस्था का परिणाम होता है। अतः इस प्रसङ्ग में मानसिक अवस्था ही सविशेषरूप से निर्णायक एवं मूलभूत कारण है। आर्थिक ढाँचा केवलमात्र शरीर है, किन्तु समष्टिगत मानसिक चेतना ही वास्तविक जीवन है। चेतनागत परिवर्त्तन शरीर सम्बन्धी परिवर्त्तन का पूर्वरूप होता है। जिस प्रकार मानसिक क्रिया के पश्चात् शारीरिक क्रिया होती है उसी प्रकार मानसिक परिवर्त्तन के पश्चात् ही किसी ढाँचे में परिवर्त्तन होता है। कठोर दण्ड भय के बिना किसी ऐसे कृत्रिम सामाजिक व्यवस्था को स्थायी स्वरूप प्रदान करना असम्भव है जो उपयुक्त मानसिक अवस्था का स्वाभाविक परि-

णाम न हो। सामान्य अवस्था में अपेक्षित परिवर्त्तन के लिये सामाजिक मन की पूर्ण तैयारी के बिना यदि हिंसा द्वारा किसी प्रकार का परिवर्त्तन सामाजिक ढाँचे में किया जायगा, तो उस सामाजिक कृत्रिमता की रक्षा के लिये असाधारण आतङ्क एवं दमनकारी अभिजात्य तन्त्र का आश्रय लेना पड़ेगा। इस प्रकार क्रान्ति के बाद प्रति क्रान्ति होने की स्वाभाविक आशङ्का बनी रहेगी। अतः यह निश्चय नही होता कि बाह्य ढाँचे में परिवर्त्तन से स्वयमेव उपयुक्त मानसिक क्रान्ति घटित होगी। किन्तु दूसरी ओर यह बात अवश्य निश्चित है कि मानसिक-क्रान्ति से बाह्य स्वरूप में परिवर्त्तन होगा ही। इस सिद्धान्त से रूस के सर्वग्रासी अधिकारवाद की व्याख्या हो जाती है।

मानव मन कारण है और भौतिक परिस्थिति कार्य है। यद्यपि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि यथावसर कुछ अंश में मन भी भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित हुये बिना नहीं रहता। यद्यपि मन और भौतिक परिस्थितियाँ परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती हैं तथापि निर्विवाद रूप से मन ही परिवर्त्तन का मूल कारण है। अन्यथा समाज को जड़वत् परतन्त्र बनाने वाली निश्चल परिस्थितियों के विरुद्ध साहसपूर्ण सफल संघर्ष करने वाले कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों के उद्योगों की कोई व्याख्या नहीं दी जा सकती। एक ही प्रकार की परिस्थिति के प्रति विभिन्न मनों में भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ क्यों होतीं हैं। राणा प्रताप और मानसिंह एक प्रकार की परिस्थिति से आवृत थे। किन्तु, उसके प्रति उनकी प्रतिक्रियाएँ एक दूसरे से भिन्न प्रकार की थीं। खण्डो बल्लाल और गणोजी शिर्के दोनो के ही सम्मुख एक प्रकार की परिस्थिति थी किन्तु, उस एक ही प्रकार की परिस्थिति में भी उन दोनों की प्रतिक्रियायें भिन्न प्रकार की क्यों हुई ? इलाहाबाद के सभी वकीलों ने अपने लाभदायक पेशों को तिलाञ्जलि देकर नेहरू परिवार का अनुगमन नहीं किया।

शताब्दियों तक चलने वाला उत्पीड़न और अत्याचार भी यहूदियों

के मन से स्वदेश की पिपासा को न मिटा सका। अन्य अनेक लोग उस अवस्था में पथभ्रष्ट होकर अनिवार्य प्रतीत होने वाली परिस्थिति से समझौता कर बैठे होंगे। जिन परिस्थितियों के सम्मुख दूसरे लोगों ने घुटने टेका उन्हीं के सम्मुख एक जाति के विचित्र दृढ़ता के साथ खड़े रहने का क्या कारण है? महाभारतकार ने गंभीर मीमांसा के पश्चात् यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि 'राजा कालस्य कारणम्' अर्थात् 'राजा-विशिष्ट तेजस्वी पुरुष ही काल-परिस्थिति-का कारण होता है। तात्पर्य यह कि परिस्थिति मनुष्य के मन की उपज होती है। अर्थ को समाज का मूलाधार मानकर मार्क्स ने कार्य को कारण मानने की भूल की है। विज्ञान ने मार्क्स की इन मान्यताओं का खण्डन कर दिया है कि विश्व की समस्त वस्तुओं की व्याख्या 'मैटर' के रूप में की जा सकती है और यह कि 'मैटर' से उत्पन्न मन का भी नियन्त्रक 'मैटर' ही है एवं मनुष्य की धारणाओं तथा संस्थाओं का भी मूल 'मैटर' ही है। इस बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक 'मैटर' के विषय में पूर्व के भौतिकवादियों की अपेक्षा अधिक जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। अब 'मैटर' को मूलभूत तत्त्व नहीं माना जाता। आज विज्ञान को, इस विश्वास के लिये, पर्याप्त कारण उपलब्ध हो चुके हैं कि 'मैटर' अपने द्रष्टा की चेतना का एक विक्षेपमात्र है और यह कि एक मूलभूत सत्ता के प्रगटित स्वरूप, शक्ति का आविर्भाव-मात्र ही 'मैटर' है। हमारी संस्कृति की मान्यता के अनुसार मन 'मैटर' का नियामक है। अस्तु सामाजिक चेतना सामाजिक ढाँचे का नियामक होती है। संस्कृति का सर्वप्रथम मन से सम्बन्ध होता है एवं उसके द्वारा संस्कृति का सम्बन्ध सामाजिक ढांचे से होता है। मार्क्सवाद मानव मन की साधनता की उपेक्षा कर केवल ढाँचे का विचार करता है।

यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि रूस में ३८ वर्षों के साम्यवादी शासन के उपरान्त भी 'withering away of the state' राज्य केविलीन होने की बात दृष्टिगत नहीं हुई। इसके विपरीत न केवल बाह्य

आक्रमणों से बचाव के लिये अपितु आन्तरिक क्रान्तियों एवं प्रतिक्रान्तियों के दमन हेतु अधिनायकवाद का स्थायीकरण आवश्यक माना जा रहा है। क्रान्ति के इतने दिनों पश्चात् भी क्रान्ति के सहभागियों को ट्राटस्की एवं बेरिया के भाग्य का भागीदार बनना पड़ रहा है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि या तो स्टालिन और ख्रुश्चेव अत्यधिक स्वार्थाभिमुख हैं अथवा ट्राटस्की एवं बेरिया ऐसे क्रान्ति के पुरस्कर्ता भी क्रान्ति के अवाञ्छित परिणामों को देखकर उसके विरोधी बनते जा रहे हैं। इन दोनों ही स्थितियों का मजदूरों की तानाशाही से कोई लगाव नहीं है। ट्राटस्की एवं बेरिया के प्रति अपनायी गई नीतियाँ सामाजिक ढाँचे द्वारा सामाजिक मन के निर्माण के सिद्धान्त की दुःखद आलोचना प्रस्तुत करती है।

सामान्य जनों के मानस तत्व का विचार छोड़ देने पर भी मार्क्सवाद के सिद्धान्त एवं व्यवहार में ऐसा कौन सा तत्व है जो शासकों को निरंकुश बनने से रोकने का कार्य करेगा ? यह मानने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि रूस में कभी भी राज्य की समाप्ति होगी।

प्राचीन भारत में एक आदर्श राज्यहीन समाज विद्यमान था। उस समय न राज्य था न राज्याधिकारी थे, न कोई अपराधी था न कोई दंड देने वाला था। धर्म अर्थात् धारणामूलक नियम के द्वारा लोग एक दूसरे की रक्षा करते थे। यथा "न राज्यं न च राजासीद, न दण्ड्यो न च दाण्डिकः। धर्मेणैव प्रजाः सर्वे रक्षन्तिस्म परस्परम्॥" सामाजिक जीवन के नियमनार्थ अधिनायकवाद की आवश्यकता नहीं थी। धर्माचरण द्वारा उत्पन्न सामाजिक मन की उदात्तता से ही समाज-जीवन की व्यवस्था होती थी। समस्त समाज स्वशासित था एवं स्वेच्छया स्वयं स्वीकृत अनुशासन प्रचलित था। उस समय किसी प्रकार के कोड या विधान का अस्तित्व नहीं था और फलस्वरूप अनुशासनात्मक कार्यवाहियों का भी अभाव था। यथा 'तेषां नासीद् विधातव्यं प्रायश्चित्तं कथंचन।' उस समय आर्थिक और शारीरिक दण्ड का भी प्रचलन नहीं

था। केवल मात्र जनापवाद ही उस समय का दण्ड था। यथा 'पुरा धिग्दण्ड एवासीद् वधदण्ड्योंऽद्य बर्तते।'

कालान्तर में समाज उपर्युक्त आदर्श से स्खलित हो गया। फल-स्वरूप समाज के ढाँचे में एक हीनतर परिवर्त्तन हो गया एवं तीव्रगति से सामाजिक संस्खलन होने लगा। इसका कारण क्या था? सब्जेक्टिव फैक्टर अर्थात् मन में इसका कारण उपलब्ध होगा। भीष्म के कथनानुसार समाज के व्यक्ति क्रमशः भ्रान्त एवं मूढ हो गए जिसके कारण उनकी प्रारम्भिक मानसिक रचना अस्तव्यस्त हों गई। परिणामस्वरूप दृढ़ता पूर्वक धर्म के नियमों का पालन करने की वृत्ति लुप्त हो गई। यथा 'ते मोहवशमापन्ना मनुजा मनुजर्षभ। प्रतिपत्तिविमोहांधाः धर्मस्तेषामनीनशत्॥" इस मानसिक अस्त-व्यस्तता के कारण एक ऐसी अव्यवस्था उप्पन्न हुई जो अभी तक स्वशासित भारतीय समाज को अविदित थी। भीष्म के कथनानुसार ऐसी अवस्था होने पर भगवान विष्णु के पास प्रतिनिधि मण्डल पहुंचा और उनसे पृथ्वी पर फैली अव्यवस्था को बतलाया। उन लोगों ने निस्सन्दिग्ध शब्दों में भगवान विष्णु से यह निवेदन किया कि उनकी सामाजिक अस्तव्यस्तता साक्षात् समष्टि चेतना के संस्खलन का परिणाम है। यथा 'भगवन्! नरलोकस्थं नष्टं ब्रह्मा सनातनम। लोभमोहादिभिर्भावैः तन्नो भयंमुपाविशत्॥" अर्थात् हे भगवन्! लोभमोहादिक भावों के कारण पृथ्वी भूलोक का सनातन ब्रह्म-सामाजिक चेतना नष्ट हो गई है। अतः हम लोगों को भय उपस्थित हो गया है।' इसका परिणाम यह हुआ कि विष्णु ने उन लोगों को राज्य व्यवस्था अङ्गीकार करने का परामर्श दिया।

हमारे देश के इन प्राचीन प्रतिनिधियों का विश्लेषण भौतिक वादियों की ऐतिहासिक व्याख्या के सर्वथा विपरीत है। समष्टि मन में धर्म के स्थान पर लोभ-मोह की प्रबलता होने के फलस्वरूप समाज के राज्य विहीन ढाचे में गड़बड़ी उत्पन्न होने से राज्याधिकार की उत्पत्ति हुई। क्योंकि राज्यविहीन सामाजिक ढांचे के द्वारा उपयुक्त मानसिक

वातावरण की सुरक्षा का विश्वास नहीं रह गया था। अस्तु, मानसिक उथल-पुथल के कारण निश्चित रूप से सामाजिक ढाँचे में प्रभावी परिवर्त्तन हो गया।

सारांश यह कि मानसिक ढाँचा ही वह आधार है जिस पर सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक तथा अन्य संस्थाओं का ढाँचा आधारित होता है। इतिहास की मानसिक व्याख्या ही वास्तविक व्याख्या होगी। इसी मूल मानसिक आधार का बाह्यरूप इतिहास का भौतिक पक्ष होता है। डाइलेक्टिसिज्म का आधारभूत संघर्ष भी सर्वप्रथम वैचारिक क्षेत्र में ही प्रारंभ होता है एवं तत्पश्चात् ही भौतिक जगत् में इसका प्रकटीकरण होता है।

अस्तु, संस्कृति मुख्य रूप से मन को प्रभावित करती है। अतः मनुष्य की उन्नति में संस्कृति के योगदान का स्वरूप सर्वाधिक मौलिक होता है। विभिन्न साधनों द्वारा संस्कृति अपने उद्देश्य की पूर्ति कर रही है। भारतीय मज़दूर संघ भी उन्ही में से एक साधन है।

श्रमिक क्षेत्र में भारतीय मजदूर संघ का पदार्पण होने से निष्पक्ष दर्शक अचम्भे में आ गये प्रतीत होते है क्योंकि उन्हें इसकी आशा ही नहीं थी। इसके कारण श्रमिक-आन्दोलन में प्रवृत्त निहित स्वार्थ वाला वर्ग भी किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया है क्योंकि इससे उनकी रुचि का तालमेल बैठता नहीं प्रतीत होता। जन सामान्य के मस्तिष्क ने श्रमिक आन्दोलन को मार्क्सिज्म, कम्युनिज़्म या लेफ्टिज्म आदि से सम्बन्धित कर रक्खा है। अनेक निष्पक्ष विचारक भी मार्क्स प्रतिपादित नियमों से रहित श्रमिक संघटन के दर्शन की धारणा को अव्यावहारिक एवं अकल्पनीय मानते हैं। कम्यूनिस्टों से प्रभावित होकर अनेक श्रमिक संघटनों एवं ट्रेड यूनियनों के कार्यकर्त्ताओं ने वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के साथ मार्क्सवाद को भी अपने विचार-दर्शन का अनिवार्य तत्व मान रक्खा है। अतः सामान्यतया मार्क्सवाद एवं विशेष रूप से उसके वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के प्रति भारतीय सजदूर संघ का दृष्टिकोण बतलाना अत्यावश्यक है।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि मार्क्सवाद का निष्कर्ष वस्तुवादी (objective) होने के कारण आपार रमणीय (ऊपरी दिखावे मात्र) का है। यह भी कहा जा चुका है कि भारतीय मज़दूर संघ वर्ग परिकल्पना की यथार्थता को नहीं मानता। किन्तु दुर्जनतोष न्याय से यदि वर्ग-परिकल्पना को यथार्थ मान भी लिया जाय तो भी हम यह नहीं समझ पाते कि वर्ग संघर्ष के साधनों से वर्ग विहीन समाज का लक्ष्य कैसे प्राप्त हो सकता है।

## क्या वर्ग संघर्ष द्वारा वर्ग विहीन समाज की स्थापना संभव है ?

वर्ग संघर्ष की वृद्धि द्वारा वर्गसंघर्ष को समाप्त करने के मार्क्स-वादी सिद्धान्त से ऐंग्लो-सैक्सन जाति के (War to end war) 'युद्ध से युद्ध समाप्त करने का नारा' याद हो आता है। दोनों ही नारे समानरूप से उपहासास्पद हैं। वर्ग संघर्ष का घनीभाव अपने पूर्ववर्त्ती घृणा की उत्कटता का अवश्यमेव अनुगमन होगा। परन्तु सर्वग्राही स्नेहभाव ही वर्ग विहीन समाज की स्थिरता की प्रथम आवश्यकता है। वर्ग संघर्ष द्वारा वर्त्तमान सामाजिक ढाँचे की समाप्ति हेतु घोर घृणा का उत्पादन किसी भी भावी सामाजिक ढाँचे को छिन्न-विच्छिन्न कर देगा चाहे वह ढाँचा वर्गहीन समाज का ही क्यों न हो। वर्ग संघर्ष में अहंभाव का होना आवश्यक है। किन्तु वर्गविहीन समाज या उस प्रकार की किसी भी दूसरी व्यवस्था के लिये अनहंभाव का होना ज़रूरी है। इस बात की कल्पना करना अत्यन्त कठिन है कि घृणा और अहंभाव की परिणति स्नेह और अनहंभाव में कैसे सम्भव होगी।

## असमाधानकारक तर्क

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद द्वारा मार्क्स वर्गसंघर्ष की अनिवार्यता सिद्ध करने का प्रयास करता है। उसका द्वन्द्वात्मक तर्क (Dialectics) प्रभावी होते हुए भी समाधान कारक नहीं है। यह कहा जाता है कि

किसी समाज में वर्त्तमान वाद से प्रतिवाद की उत्पत्ति होती है। इन दोनों तत्वों के पारस्परिक संघर्ष से संविवाद का प्रादुर्भाव होता है। कालान्तर में यह संविवाद ही वाद का रूप धारण करता है और पुनः इससे प्रतिवाद की उत्पत्ति होती है। यदि यह मान लिया जाय कि वर्त्तमान सामाजिक वाद और प्रतिवाद के पारस्परिक संघर्ष की चरम परिणति वर्गविहीन समाज की स्थापना रूप संविवाद होगी तो स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के वर्गविहीन समाज का प्रतिवाद क्या होगा, जो कालान्तर में स्वयं एक वाद बन जायगा। यदि वर्गविहीनता समाज व्यवस्था का सर्वोतम रूप हो और यदि उसका कोई प्रतिवाद होगा तो तुलनात्मक दृष्टि से वह पतन को ही प्राप्ति करायेगा। यदि हम यह मान लें कि वर्गविहीन समाज का प्रतिवाद न होगा तो विवश होकर हमें यह मानना पड़ेगा कि किसी प्रतिवाद के अभाव में मानवता का विकास रुक जायेगा अथवा वर्ग-विहीन समाज की स्थापना के उपरान्त सामाजिक द्वन्द्ववाद के सिद्धान्त की क्रियाशीलता समाप्त हो जायेगी। इस परिणाम से इस सिद्धान्त की शुद्धता प्रस्थापित करने में कठिनाई होती है कि "History of humanity is the history of its class struggles" अर्थात् "मानवता का इतिहास समाज के वर्ग संघर्ष का ही इतिहास होता है।" वर्गों एवं संघर्ष की समाप्ति के पश्चात् क्या इतिहास चक्र का प्रवर्त्तन अवरुद्ध हो जायेगा ? वस्तुतः वर्गचेतना युक्त व्यक्तियों वाला समाज वर्गविहीनता के निर्वाह में स्वयं को असमर्थ ही पायेगा। वर्ग-चेतना को उभाड़ने से अनिवार्य रूप से वर्गराज्य की उत्पत्ति होगी। वर्गविहीनता की सामाजिक चेतना ही वर्गविहीन-समाज की अवश्यंभावी नींव है। इसके लिये वर्गचेतना का समूलोच्चाटन आवश्यक है। अतएव भारतीय मजदूर संघ की वर्ग-कल्पना अधिक वैज्ञानिक है और वर्ग-विहीन समाज के अभीप्सित लक्ष्य के अधिक उपयुक्त है।

वेदों को उद्धत करने वाले अत्यधिक उपहासभाजन बने ब्राह्मणों की

अपेक्षा कहीं अधिक धार्मिक कट्टरता के साथ ट्रेडयूनियन के कार्यकर्त्ताओं को मार्क्स का उद्धरण देते देख किसी को आश्चर्य भी होता है। यह एक नये प्रकार की अपरिवर्तनवादिता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इससे केवल यह प्रकट होता है धर्मग्रन्थवादिता पहले के सदृश आजभी दृढ़ है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मार्क्सवाद समयानुकूल नहीं रहा। मार्क्स के कई सिद्धान्त एवं भविष्यवाणियाँ पहले ही अशुद्ध सिद्ध हो चुकी हैं। मार्क्स के भविष्य-कथन के अनुसार इंगलैण्ड ऐसे किसी अत्यधिक उद्योगशील (Industrialised) देश में पहले समाजवाद का उदय होना चाहिए था किन्तु इसके विपरीत यूरोपीय देशों में औद्योगिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़े रूस में साम्यवाद की स्थापना हुई। आज भी U. K. या U. S. A. सदृश देशों की अपेक्षा पिछड़े हुए देशों में ही साम्यवादी अधिक शक्तिशाली है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि इस बात की कोई गारन्टी नहीं है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के उन्मूलन से आर्थिक साम्यता स्थापित हो ही जायेगी। वर्त्तमान वर्गों का खात्मा स्वयमेव वर्गविहीनता में नहीं परिणत हो सकता। लाल-क्रान्ति के पश्चात् सामाजिक ढाँचे में एक परिवर्त्तन हो सकता है किन्तु उस समय भी वर्गों का अस्तित्व बना रहेगा। उस समय की अवस्था में केवलमात्र यही अन्तर रहेगा कि शासन-तन्त्र पर अधिकार रखने वाले दलीय नेताओं के एक समूह में निहित स्वार्थों की झलक मिलेगी। पूँजीवादी व्यवस्था में कतिपय स्वतन्त्र पूँजीपतियों द्वारा निर्दयता-पूर्वक शोषण का कार्य किया जाता है। साम्यवादी व्यवस्था में पूँजी-पतियों के स्थान पर साम्यवादी नेताओं का एक वर्ग आ जायेगा। किन्तु शोषण उस समय भी चलता रहेगा। तथापि इन दोनों ही अवस्थाओं में थोड़ा भेद रहेगा। गैर कम्यूनिस्ट जनतन्त्रीय ढाँचे में व्यक्तिगत पूँजी से होने वाले शोषण को बहुत अंशों में नियन्त्रित, नियमित या अवरुद्ध किया जा सकता है। परन्तु कम्यूनिस्ट राज्य में शोषक शासकों के वर्ग को नियन्त्रित करने वाली कोई शक्ति न रहेगी।

भारतीय साम्यवादियों ने प्रायः हृदय परिवर्त्तन के सर्वोदयी विचार धारा की खिल्ली उड़ाई है। उनके मतानुसार टाटा और बिड़ला अपनी वर्तमान सुविधापूर्ण स्थिति को स्वेच्छा से कभी भी नहीं छोड़ सकते। यदि नियमित शक्ति से टाटा भ्रष्ट हो सकते हैं तो यह विश्वास करने के लिये भी कोई ठोस कारण नहीं है कि सार्वभौम शक्ति से स्टालिन एवं माओ पूर्णतया भ्रष्ट नहीं हो जायेंगे। मार्क्सीय सिद्धान्त के विपरीत रूसी शासकों ने इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खा है कि उनका अधिनायकवाद समाजवादी अवस्था की संक्रमण कालीन वस्तु न बन जाय। सुदूर भविष्य में भी 'राज्य के स्वयं विलीन होने, की बात घटित होने की संभावना नहीं है।ऐसा अधिकारवादी राज्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर सकता है, किन्तु इससे वास्तविक अर्थ में समाजीकरण का कार्य नहीं होता। क्योंकि उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व होता है और स्वयं राज्य पर जनता का स्वामित्व नहीं होता। साम्यवादी रूस में व्यक्तिगत पूँजीवाद का खात्मा किया जा चुका है किंतु वहाँ अब भी स्वतंत्र और समान लोगों का वर्गहीन जनतांन्त्रिक अन्तर्राष्ट्रीय समाज उत्पन्न नहीं हुआ है। यह तथ्य मार्क्स के उस सिद्धान्त की असत्यता का स्पष्ट प्रमाण है कि पूँजीवाद का एकमात्र विकल्प समाजवाद ही है।

## प्रबन्धकतावादी समाज

आज का रूस जेम्स बर्नहम द्वारा प्रतिपादित 'मैनेजरियल स्टेट' प्रबन्धकानुगामी राज्य-का स्मरण दिलाता है, जिसमें राज्य के शासकों एवं उद्योग-प्रबन्धकों के हाथों में सभी प्रकार के अधिकार केन्द्रित रहते हैं। बर्नहम के कथनानुसार प्रबन्धकानुगामी समाज न पूँजीवादी होता है और न समाजवादी। मार्क्स ने राज्य के इस तृतीय भेद के उदय की पूर्वकल्पना नहीं की थी, जिस प्रकार वह सतत् शक्ति एवं श्रेष्ठता प्राप्त करने वाले उस मध्यमवर्ग की पूर्वकल्पना नहीं कर सका जो विशाल पैमाने पर चलने वाले व्यवसायों के वेतन प्राप्त कर्मचारियों का एक नया मध्यवर्त्ती वर्ग था जिसमें व्यवसायतज्ञ, वैज्ञानिक, रसायनिक टेकनीशियन, इन्जीनियर और विशेषज्ञों का समावेश होता है। इस वर्ग के पास प्रोलेटरियट की अपेक्षा उत्तम उत्पादन साधन एवं अधिक नियन्त्रण की क्षमता होती है।



यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त कुछ तथ्य उदाहरण रूप से ही दर्शाये गये हैं। उनकी संख्या इतनी ही नहीं है। इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह आधारभूत तथ्य है कि विकासशील वैज्ञानिक ज्ञान के परिणाम स्वरूप मार्क्स का 'मैटर' निश्चित रूप से 'चेतना' के सम्मुख आत्मसमर्पण कर देता है। अर्थात् आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों ने चेतना को सृष्टि का मूलतत्व प्रतिपादित किया है न कि 'मैटर' को।

प्रस्तुत मीमांसा का यह अभिप्राय नहीं है कि कार्ल मार्क्स ने मानवीय विचार को जो देन दी है वह महत्त्वहीन है। इसके विपरीत मार्क्स एक महान विचारक था और आने वाले काल में होने वाले विकासों के पूर्व दर्शन की असमर्थता में उसका कोई दोष नहीं है। इस तथ्य के बावजूद कि हमारे विचारानुसार मार्क्स के सिद्धान्त अशुद्ध एवं अपूर्ण हैं, हम कार्ल मार्क्स के प्रति अत्यन्त आदरभाव रखते हैं। किन्तु, उसके अनुयायियों ने उसके साथ महान अन्याय किया है। उन्होंने समस्त पुराणपन्थ के विरोधी एक सिद्धान्त को पुराणपन्थ में परिवर्त्तित कर दिया है। उन लोगों ने कार्लमार्क्स को पैगम्बर का दर्जा दे डाला है जो उसके सैद्धान्तिक तत्व का ही विरोधी है।

## मार्क्सीय पन्थ

मार्क्स ने Religion 'पन्थानुगामी मत' का खण्डन किया। किन्तु आज मार्क्सवाद अधार्मिकों का एक पन्थानुगामी मत बन गया है, जिसमें किसी मत में पाये जाने वाले पवित्र ग्रन्थ, विश्वास, पैगम्बर सन्त, बलिदानी पुरुष, उसके पर्व एवं उत्सव तथा इन सब के अतिरिक्त अनुयायियों का जोश खरोश एवं प्रबल आग्रह आदि सभी विशेषतायें विद्यमान हैं। यह एक विचित्र बात है कि मार्क्स निरीश्वरवादियों का

निक टेकनीशियन, इन्जीनियर और विशेषज्ञों का समावेश होता है। इस वर्ग के पास प्रोलेटरियट की अपेक्षा उत्तम उत्पादन साधन एवं अधिक नियन्त्रण की क्षमता होती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त कुछ तथ्य उदाहरण रूप से ही दर्शाये गये हैं। उनकी संख्या इतनी ही नहीं है। इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह आधारभूत तथ्य है कि विकासशील वैज्ञानिक ज्ञान के परिणाम स्वरूप मार्क्स का 'मैटर' निश्चित रूप से 'चेतना' के सम्मुख आत्मसमर्पण कर देता है। अर्थात् आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों ने चेतना को सृष्टि का मूलतत्व प्रतिपादित किया है न कि 'मैटर' को।

प्रस्तुत मीमांसा का यह अभिप्राय नहीं है कि कार्ल मार्क्स ने मानवीय विचार को जो देन दी है वह महत्त्वहीन है। इसके विपरीत मार्क्स एक महान विचारक था और आने वाले काल में होने वाले विकासों के पूर्व दर्शन की असमर्थता में उसका कोई दोष नहीं है। इस तथ्य के बावजूद कि हमारे विचारानुसार मार्क्स के सिद्धान्त अशुद्ध एवं अपूर्ण हैं, हम कार्ल मार्क्स के प्रति अत्यन्त आदरभाव रखते हैं। किन्तु, उसके अनुयायियों ने उसके साथ महान अन्याय किया है। उन्होंने समस्त पुराणपन्थ के विरोधी एक सिद्धान्त को पुराणपन्थ में परिवर्त्तित कर दिया है। उन लोगों ने कार्लमार्क्स को पैगम्बर का दर्जा दे डाला है जो उसके सैद्धान्तिक तत्व का ही विरोधी है।

## मार्क्सीय पन्थ

मार्क्स ने Religion 'पन्थानुगामी मत' का खण्डन किया। किन्तु आज मार्क्सवाद अधार्मिकों का एक पन्थानुगामी मत बन गया है, जिसमें किसी मत में पाये जाने वाले पवित्र ग्रन्थ, विश्वास, पैगम्बर सन्त, बलिदानी पुरुष, उसके पर्व एवं उत्सव तथा इन सब के अतिरिक्त अनुयायियों का जोश खरोश एवं प्रबल आग्रह आदि सभी विशेषतायें विद्यमान हैं। यह एक विचित्र बात है कि मार्क्स निरीश्वरवादियों का

ईश्वर बन चुका है। मार्क्सीय मत के प्रति वर्त्तमान दृढ़ आग्रह आज मानव विचार के विकास का बाधक बन गया है। यह स्थिति विज्ञान की आत्मा के विरुद्ध है। मानव को विकास-पंथ में अग्रसर करने के बजाय यह घड़ी की सूई को पीछे ढकेलने का कार्य कर रही है। इस दावे को दृष्टिपथ में रखते हुए कि मार्क्स स्वयं पूर्णतया वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पन्न था यह बात निस्संकोच रूप से कही जा सकती है कि वर्तमान मार्क्सवाद में मार्क्सवाद का लेश भी नहीं है।

भारतीय मजदूर संघ न तो वामपंथी है न दक्षिणपन्थी। 'राष्ट्रवाद' की धारणान्तर्गत आर्थिक गुत्थियों को समझने में असमर्थ लोगों से यह कहा जा सकता है कि 'वास्तववाद' के अतिरिक्त भारतीय मजदूर संघ अन्य किसी भी वाद का अनुगामी नहीं है।

हमें स्वयं को नारों के तर्क शून्य प्रभाव से मुक्त कर समस्या की तह तक पहुंचना चाहिये। अर्थात् यह समझना चाहिये कि सम्पत्ति-विभाजन की मूल समस्या के प्रति भारतीय मजदूर संघ का क्या रुख है और क्या यह आर्थिक साम्य का हामी है?

इसके प्रति हमारा स्वीकारात्मक एवं निषेधात्मक दोनों ही प्रकार का उत्तर होगा। स्वीकारात्मक इसलिये कि हम असमानता के विरोधी हैं और निषेधात्मक इसलिये कि साम्य की प्रचलित धारणा अत्यन्त छिछली एवं अनुपयुक्त है यह हमारी समस्याओं को सन्तोषजनक रीति से हल करने में असमर्थ है।

## अमानवों का क्या होगा?

यह कहा जाता है कि संसार की सम्पत्ति में समान अधिकार होने के कारण सभी मनुष्य बराबर हैं। सभी पदार्थों से वंचित लोगों को कुछ चीजें प्रदान की गई हैं। किन्तु, सम्पत्ति कहलाने वाली वस्तुओं से मानव अतिरिक्त प्राणियों का कौन सा सम्बन्ध होगा? क्या समस्त सम्पत्ति के अपने समान अधिकार से वे वंचित रहेंगे? मानव से

हीन प्राणियों का वहिष्कार करके संसार की समस्त सम्पत्ति को अपने में ही बाँट लेने का अधिकार मनुष्य को किससे प्राप्त हुआ है ? क्या इस प्रकार का अधिकार अतिशय स्वार्थपूर्ण नहीं है ? क्या मनुष्य की सुविधा के अनुसार हम जब चाहे तभी पशु-पक्षियों का अस्तित्व समाप्त कर सकते हैं ? क्या हम अन्य प्राणियों को जीने का समान अधिकार नहीं देना चाहते हैं ? क्या यह होमोसेण्ट्रिक नहीं है ? आर्थिक साम्य के पाश्चात्य समर्थकों ने पूर्णतया अन्य प्राणियों के अधिकारों की उपेक्षा की है। यह उपेक्षा आकस्मिक नहीं है। भौतिकवादी विचारधारा की यह एक विशेषता ही है। दूसरे यह कि साम्य की धारणा के लिये भौतिकवाद में कोई न्याययुक्त कारण भी नहीं है। श्रेष्ठ क्षमता और सामर्थ्य वाला कोई भी व्यक्ति अन्यों के साथ समान स्थिति में क्यों रहना चाहेगा ? भौतिकवाद इसका कोई भी उत्तर नहीं दे सकता। यहीं कारण है कि साम्य की स्थापना के लक्ष्य को पुरस्कृत कर जिन लोगों ने सत्ता प्राप्त की वे ही अपने देश में घोर विषमता के लिए उत्तरदायी हुये हैं। पश्चिम की समानता सम्बन्धी नैतिकता निराधार है क्योंकि इसकी जड़ पाश्चात्य भौतिकवाद में है। अन्ततोगत्वा कहीं बाहर से साम्य का आरोपण नहीं हो सकता अपितु इसकी उत्प्रेरणा अन्दर से की जा सकती है। पहले इसके लिये हमारी प्रवृत्ति बननी चाहिये। भौतिकवाद में चेतना की कोई मान्यता नहीं है।

## देने वाला वाद

मानव मस्तिष्क में साम्य की भावना का प्रेरक कौन सा तत्व होगा ? भौतिकवाद द्वारा इतिहास के इस आवश्यकता की पूर्त्ति नहीं हो सकती। पश्चिम ने आदान करने वाले समाजवाद को विकसित किया है किन्तु प्रदान करने वाले किसी वाद की कल्पना करने में वह असफल रहा है।

भारतीय इतिहास स्वेच्छा से होने वाले आत्म-बलिदान के उदाहरणों

से भरा पड़ा है। भारत में ऐसे विश्वजयी व्यक्ति उत्पन्न हुये है जिन्होंने 'विश्वजित् यज्ञ' के अवसर पर अपनी समस्त सम्पत्ति का दान कर दिया। ऐसे उदाहरणों की संख्या बढ़ाने की अत्यन्त आवश्यकता है। किन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस प्रकार के यज्ञ पूर्णतया स्वेच्छा से सम्पन्न होते थे। इसके लिये किसी ऊपर के अधिकारी या अधीनस्थ जनों का कोई दबाव नहीं होता था।

बलिदान की प्रेरणा किस से मिलती है? इस प्रकार की कोई आशा अतिवादी होगी कि सामान्य जब 'मैं और मेरा' के घेरे के बाहर पड़ने वाले किसी प्राणी के लाभार्थ अपनी किसी वस्तु का स्वेच्छा से त्याग कर देंगे। एकत्व का साक्षात्कार ही स्वेच्छामूलक त्याग की प्रेरणा देने वाला होता है। ऐसी अनुभूति के अभाव में शुद्ध त्याग की बात सर्वथा अकल्पनीय है। कोई भी मनुष्य उस समय तक रघु या शिवि नहीं बन सकता जब तक उसके 'अहंकार और ममकार' की भावना एकत्वानुभूति के रूप में उस सीमा तक विस्तृत नहीं हो जाती जहाँ पश्चिम का सर्वाधिक कल्पनाशील भौतिक वादी अचम्भित हो जाय।

भारतीय ऋषियों एवं सन्तों ने इस बात का साक्षात्कार किया था सत्ता एक है। समस्त विश्व में एक ही नियम व्याप्त है और यह कि विभिन्न नाम रूपवाले जड़ चेतन पदार्थ एक ही तत्व के विक्षेप मात्र हैं। इस तत्व को उन लोगों ने 'एकमेवाद्वितीयम्' अहंब्रह्मास्मि 'तत्वमसि' एवं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' आदि महावाक्यों द्वारा प्रगट किया है। उन ऋषियों ने 'एक में सबको' और 'सब में एक को' का अनुभव किया था। यह एक सिद्धान्त मात्र नहीं था अपितु इसकी प्रत्याक्षानुभूति हुई थी।

## एकमेवाद्वितीयम्

'सभी कुछ एक ही है' यही एकमात्र ऐसा उपयुक्त दृष्टिकोण है जिसमें स्वेच्छा से बलिदान की भावना का समर्थन एवं उसकी व्याख्या

की जा सकती है तथा इसीसे आवश्यक प्रेरणा भी प्राप्त हो सकती है। जब तक मैं मैं हूं और तुम तुम हो, तब तक मैं कष्ट उठाना नहीं पसन्द करूँगा। आपके समान अधिकार के दावे का खण्डन हमारी योग्यता के आधार पर होने वाले विशेषाधिकार के दावे से हो जायेगा। किन्तु, 'एकमेवाद्वितीयम्' के तत्व की एक झलक मात्र पाने से हम दोनों की सम्पूर्ण स्थिति ही बदल जाती है। यही सत्य समस्त निःस्वार्थ त्याग का स्रोत है। यह पश्चिम के आदानवादी समाजवाद के स्वस्थ विरोधी प्रदानवादी सिद्धान्त का आधार है। इस मौलिक एकत्व की अनुभूति के बिना ही प्रस्थापित समानता के सिद्धान्त से समस्याएं उतनी हल न की जा सकीं जितनी कि उनकी वृद्धि हुई है। इस अनुभूति के आधार पर समानता की सभी बातें अपूर्ण एवं अपरिपक्व प्रतीत होती हैं। इस एकत्वानुभूति से ही मानव के आन्तरिक जीवन में व्यवस्था की पुनः प्रतिष्ठा के साथ नवीन समाजव्यवस्था का मानसिक आधार प्राप्त होता है। इसी से भारत उस स्थान पर सफल होने में समर्थ हुआ था जहाँ पर पश्चिम को दुःखद असफलता का सामना करना पड़ा है।

पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी इस बात को मानने में आनाकानी नहीं की है। मैक्समूलर ने कहा, If I were to ask my self from what literature we here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks, Romans and of one Semitic, race, the Jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more comprehensive more universal, in fact more human.....again I shall point to India.

अर्थात् "यदि मैं अपने आप से यह पूछूं कि एकमात्र ग्रीक, रोमन, सेमिटिक एवं यहूदी विचारों से संस्कारित हम यूरोपवासी अपने आन्तरिक जीवन को अधिकपूर्ण, बोधगम्य, सार्वभौम एवं मानवीय

बनाने के लिए अत्यावश्यक पथ प्रदर्शन किस साहित्य से प्राप्त करें तो ...'मैं भारत की ओर संकेत करूँगा"।

आदर्शात्मक रूप में एकमात्र भारतीय मजदूर संघ ही श्रम के क्षेत्र में उक्त भारत का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसका किसी वाद विशेष से गठबन्धन नहीं हुआ है। यह आर्थिक असमानता को निश्चित रूप से दूर करना चाहता है किन्तु वामपन्थी नहीं है। कम्युनिस्टों के वर्गसंघर्ष सिद्धान्त को न मानते हुए भी यह दक्षिणपन्थी नहीं है। केवल 'सामान्य' ही नहीं अपितु 'एकत्व' इसका ध्येयधोरण है। यह सब प्रकार से भारत का है और भारत इसका है।

## मार्क्सवाद बनाम हिन्दुत्व

कार्ल मार्क्स 'मैटर' का प्रबल भक्त था। उसकी दृष्टि में 'मैटर' ही एकमात्र वास्तविकता थी। यह स्पृश्य और दृश्य है। इन्द्रियों या वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा समस्त वस्तुओं की सत्ता का निर्धारण होता है। टेस्टट्यूब या टेलिस्कोप की परीक्षा से प्रमाणित हुए बिना किसी भी पदार्थ की सत्ता का निश्चय या अनुमान नहीं किया जा सकता। चूँकि प्रयोगशालीय-विज्ञान द्वारा ईश्वर की जांच नहीं की जा सकती, अस्तु ईश्वर सम्बन्धी धारणा को एक वहम माना जाने लगा। यह मान लिया गया कि विज्ञान विश्व की गुत्थी को सुलझाने में समर्थ है। हमारे ज्ञान का एकमात्र यही विश्वसनीय साधन है। वैज्ञानिक उपलब्धियों के परे धर्म या नीतिशास्त्र की बातें त्याज्य हो गईं। चेतना का अपना कोई पृथक अस्तित्व नहीं है। विभिन्न अणुओं और परमाणुओं के विचित्र समिश्रण के कारण यह 'मैटर' उत्पन्न हुआ है। 'मैटर' ही चेष्टा का अवच्छेदक है। वस्तुगत परिस्थितियों से ही मानसिक जगत अवच्छिन्न होता है।

## मार्क्स पर डार्विन और हीगेल का प्रभाव

विगत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में डार्विन के सिद्धान्त का बोलबाला

था। 'नैसर्गिक चुनाव' के क्रमानुसार 'योग्यतम के जीवन' के सिद्धान्त पर आधारित डार्विन के सिद्धान्त पर तत्कालीन अनेक सिद्धान्तों का समर्थन किया जाता था। उदाहरणार्थ आँग्ल साम्राज्यवाद के 'श्वेतों के प्रभुत्व', नाजियों की 'आर्य जाति की श्रेष्ठता' तथा मार्क्सवादियों के 'वर्ग-संघर्ष' के सिद्धान्तों का समर्थन डार्विन के ही निष्कर्षों के आधार पर होता था। यद्यपि समय-समय पर होने वाले अवरोधों और प्रतिरोधों को पूर्णतया उन्मूलित नहीं किया जा सकता तथापि विकास का होना मान लिया गया था। स्वभावतः इसका परिणाम यह होता है कि नियमतः प्रत्येक परवर्ती भावी विचार, धारणा, प्रकार या सभ्यता पूर्व के अपने सजातीय की अपेक्षा अवश्यमेव श्रेष्ठ होंगे। मनुष्य सृष्टि का शिरोमणि था और निश्चित रूप से अतिमानव के आगमन की भविष्यवाणी की गई थी। पूर्व की सामाजिक व्यवस्थाओं की अपेक्षा समाज का पूँजीवादी ढाँचा अधिक प्रगतिशील था। किन्तु, बाद में इससे भी किसी श्रेष्ठ ढाँचे का आना निश्चित था। उन्नीसवीं शताब्दी की यूरोपीय सभ्यता की अपेक्षा निश्चय ही पूर्व की समस्त सभ्यताएँ हीनतर कोटि की थीं। विज्ञान सर्वश्रेष्ठ माना जाने लगा और इसके निरीश्वर-वाद को मनुष्य का बौद्धिक विकास मान लिया गया जो इस बात का द्योतक था कि मनुष्य की बुद्धि पहले पहल मध्यकालीन धर्मों की गुलामी से मुक्त हुई है। विश्वास में अविश्वास एवं अविश्वास में विश्वास करना सर्वाधिक जागरूक मस्तिष्क की विशेषता मानी गई। डार्विनवाद एक ऐसा नया सिद्धांत था जिसे मानव ज्ञान के समस्त क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जाने लगा। समाजशास्त्र भी इसका अपवाद न रहा और मार्क्स इस सामाजिक विज्ञान का डार्विन सिद्ध हुआ।

विकास विश्व का नियम मान लिया गया। पूँजीवादी व्यवस्था का समाजवादी व्यवस्था के रूप में परिणत हो जाना अनिवार्य था। किंतु इस सामाजिक विकास का कौन सा ढंग था? इसके उत्तर में नैसर्गिक चुनाव का सिद्धांत पुरस्कृत किया गया। इससे मार्क्स के मस्तिष्क का

आवश्यक रहस्य प्राप्त होता है। इसे हीगेल के डायलेक्टिजम से और भी उत्तेजना प्राप्त हुई। दर्शन के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले हीगेल के तार्किक पद्धति को केवल समाजशास्त्र के क्षेत्र में विनियुक्त किया गया। इसी आधार पर मार्क्स ने अपने 'डायलेक्टिक मैटरियलिज्म' का निर्माण किया। यह आश्चर्यजनक रीति से डार्विन के 'अस्तिव के लिए संघर्ष' वाले सिद्धान्त के अनुकूल था। यह माना गया कि संघर्षरत तत्त्वों की पारस्परिक प्रतिक्रियाओं से ही प्रगति को प्राप्ति होती है। जीवन का यह सिद्धान्त माना गया कि 'The conflict of contradictions with growth as its cousequence' अर्थात् अन्तर्विरोधों के संघर्ष से विकास का परिणाम प्राप्त होता है।' समस्त वर्तमान समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष की एक कहानी है। प्रारम्भ में यह एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण की एक कथामात्र थी। 'डायलेक्टिकल मैटरियलिज्म' ने श्रमिकों की क्रान्ति और प्रोलेटेरियेट की तानाशाही का प्रतिपादन किया जिसके अनन्तर राज्य स्वयं समाप्त हो जायगा और कम्यून के स्वामित्व की विशेषता से युक्त राज्यविहीन वर्गरहित समाज का प्रादुर्भाव होगा।

## कम्युनिज्म—एक नये प्रकार का सेमेटिक धर्म

इस सिद्धान्त के विकास के साथ-साथ मार्क्सवाद पूर्णतया एक धर्म बन गया। इस नवीन धर्म के पैगम्बर मार्क्स है, कम्युनिस्ट पार्टी का मन्त्रिमण्डल इसका पुरोहित वर्ग है, डायलेक्टिकल मैटरियलिज्म—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद-इसका अल्लाह है जिसके द्वारा विश्व का समस्त प्रपञ्च संचालित होता है और कम्युनिज्म की सर्वोच्च अवस्था अर्थात् स्वर्ग, वह अवस्था होगी जिसमें हर एक को समस्त वस्तुएँ प्राप्त होंगी। समस्त सैमेटिक धर्मों की विशेषता रूप अन्ध श्रद्धा और दुराग्रह के साथ यह नवीनतम धर्म अपनी पूर्णता को प्राप्त होता है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मार्क्स ने अपने सिद्धांत के निर्माण में महान परिश्रम किया। किन्तु इसके समान ही यह भी निर्विवाद बात है कि उसकी अवगति वैज्ञानिक होने के बजाय काल्पनिक है। उसकी विचारधारा तत्कालीन पूर्वग्रहों और धारणाओं से प्रभावित थी और इस अर्थ में मौलिक होने की अपेक्षा अधिक अनुकरणात्मक थी। बाद की घटनाओं ने मार्क्स के अतिसरलीकृत फार्मूले की व्याख्या की है। इनसे यह सिद्ध होता है कि उसने जिन आँकड़ों का उपयोग किया है वे अपर्याप्त हैं, उसकी सूचनायें गलत हैं, उसका दृष्टिकोण अवैज्ञानिक है, उसकी भविष्यवाणियाँ अशुद्ध हैं और उसके सिद्धान्त असमर्थनीय हैं।

मार्क्सवाद कोई दर्शन नहीं हैं। यह स्वयं के लिये दर्शन के सम्मानित पद का दावा नहीं कर सकता। यह न्यूटन के विज्ञान, डार्विन के विकासवाद और हीगेल के द्वन्द्ववाद पर होने वाला बौद्धिक व्यायाममात्र है। यह स्वयं के लिये एक सामाजिक विज्ञान को विकसित करने का प्रयत्न करने वाली अनेक दार्शनिक पद्धतियों में से एक है। जो लोग मार्क्सवाद और हिन्दुत्व की परस्पर तुलना करना चाहते हैं वे दोनों के प्रति अपनी अज्ञानता ही प्रदर्शित करते हैं।

## हिन्दुत्व और कम्युनिज़्म की तुलना नहीं हो सकती

हिन्दुत्व एक अथाह समद्रहै जो पाश्चात्य शब्दावली में फिलासोफी या विज्ञान से सर्वथा भिन्न रूप की है तथा उनकी अपेक्षा अधिक बोधगम्य है। हिन्दू धर्म एक विश्वव्यापी नियम है। हिन्दुओं ने इसका आविष्कार नहीं किया है वरन् इसका पता लगाया है और अपने समाज-व्यवस्था के निर्माण हेतु इसका उपयोग किया है। वैज्ञानिक होने के लिये किसी भी सामाजिक ढाँचे को सृष्टिविद्या के अनुकूल होना आवश्यक है। इस संसार की सार्वभौम दृष्टि का नैसर्गिक एवं अनिवार्य पूरक हिन्दुओं का वर्णधर्म है। पश्चिम के 'वाद' विभिन्न दार्शनिकों के

विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन पाश्चात्य दार्शनिकों की तुलना हमारे उन ऋषियों से नहीं की जा सकती जिनके माध्यम से सार्वभौम सिद्धान्तों का प्रकटीकरण हुआ। 'वर्ण' और 'शब्द' के रूप में प्रकट वैदिक मंत्र सृष्टि के मूल तत्त्वों का आन्दोलन ही है। मंत्रों को प्राप्त प्रतिष्ठित पद किसी भी प्रकार के नारे या आकर्षक शब्दावली को नहीं प्राप्त हो सकता।

इसके बावजूद इस प्राचीन देश में अपने लिये कतिपय अनुयायियों का निर्माण कर लेना ही मार्क्सवाद की सर्वाधिक आश्चर्यमयी किन्तु विश्वसनीय सफलता है। कम्युनिज्म के प्रति हिन्दुओं के आकृष्ट होने का कारण उसकी समाधानकारक प्रकृति नहीं थी अपितु इसका कारण रूस की सफल क्रान्ति थी। यह तथ्य इस बात से स्पष्ट होता है कि इस अहिन्दू विचारधारा पर भारतीयों ने १९१७ के बाद से ही विचार करना प्रारम्भ किया, यद्यपि इस सिद्धान्त की पूर्ण रूपरेखा १८४८ में प्रस्तुत हो चुकी थी। इस देश में अन्ततोगत्वा अपना समर्थन प्राप्त करने का श्रेय इस सिद्धान्त को प्राप्त हो जाना कम विस्मयजनक नहीं है। विशेषकर इस दृष्टि से कि यहाँ के लिये जड़वाद कोई नवीन मत नहीं था। हिन्दुओं ने जड़वाद को उसी समय पूर्ण विकसित कर लिया था जब यूरोप जंगली अवस्था में था। किन्तु, जड़वाद को मानव जाति के सुख और समृद्धि का विनाशक होते देख हिन्दुओं ने इस सिद्धान्त का परित्याग कर दिया।

## हिन्दुओं ने जड़वाद का स्वरूप निरूपण किया उपरान्त उसका त्याग किया

पाश्चात्य भूतवाद के जनक डेमाक्रिटस के शताब्दियों पूर्व ही हिन्दुओं ने एक व्यवस्थित भूतवादी सम्प्रदाय को विकसित किया था। यह अत्यन्त विचित्र बात है कि भारतीय भूतवाद के निर्माता देवगुरु वृहस्पति ही थे। बार्हस्पत्य सम्प्रदाय के विचारों ने समस्त ज्ञानों एवं प्रत्यक्ष

अनुमानादि प्रमाणों की प्रामाणिकता पर आपत्ति उठायी। इसने आप्तता को भी अस्वीकृत कर दिया। कालान्तर में स्वभाववाद या प्रकृतिवाद से प्रभावित होकर इसके उस समय के अत्यन्त व्यवस्थित लोकायत दर्शन का निर्माण हुआ। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों का यह दावा था कि केवल मात्र लोकायत मत ही वैज्ञानिक है, प्रत्यक्ष मात्र प्रमाण है, आकाश को भी मूल तत्व नहीं माना जा सकता क्योंकि यह प्रत्यक्ष योग्य नहीं है, चरम वास्तविकता रूप तत्त्वों से ही चेतना की उत्पत्ति होती है, मस्तिष्क के तन्तुओं की हलचल के अतिरिक्त बुद्धि का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, क्रिया एवं परिणाम में कोई कार्यकारण का रूप संबध नहीं होता। अदृष्ट, पुनर्जन्म, कर्मफल या स्वर्ग नरक सम्बन्धी सिद्धान्त अर्थहीन हैं, प्रकृति या स्वभाव से ही सुख या दुःख की उत्पत्ति होती है, धूर्त्तपुरोहितों के छल के अतिरिक्त धर्मग्रंथ कुछ भी नहीं, राजनीत ही ज्ञान का वास्तविक रूप है और भौतिक समृद्धि तथा शरीर सुख की प्राप्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।

भूतवाद के विकास के लिये भारत में पूर्ण क्षेत्र प्राप्त हुआ। वैचारिक स्वतन्त्रता हिन्दुओं के सामाजिक जीवन की सार्वकालिक विशेषता रही है। हिन्दू धर्म एक मानव धर्म है। जहाँ तक दार्शनिक विचार धाराओं का सम्बन्ध है इस धर्म को मानव जगत के सभी सम्प्रदायों का संघ कहा जा सकता है। केवल हिन्दू धर्म में ही सभी प्रकार की विचार धाराओं का सह अस्तित्व संभव रहा है। हिन्दुत्व में समस्त सम्प्रदायों और मतों का समावेश हो जाता है। अन्तिम रूप से भूतवाद का निवारण इस वाद के सिद्धान्तों के अज्ञान के कारण नहीं हुआ था अपितु परीक्षा की कसौटी पर खरा न उतरने के कारण ही इसका निवारण हुआ। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भूतबाद की नैसर्गिक चरम परिणति अतिहीन रूप के सुखवाद में हुई जिससे एक आसुरी जाति का विकास होने लगा। इसी कारण वैदिक एवं अवैदिक बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों ने भी इस भूतवाद की आलोचना की। दर्शनों के उन्मुक्त संघर्ष में

भूतवाद परजित हो गया। आधुनिक काल के लाल चार्वाकों ने यह मानने की भूल की है कि भूतवाद का सिद्धान्त भारतीयों के लिये सर्वथा नवीन है और यह पूर्व के लिये पश्चिम की एक उदार देन है। वस्तुतः ईसाइयत में अपने विश्वास की समाप्ति होने के उपरान्त पश्चिम ने नवीन मत को अपनाया है जिसको परीक्षण एवं अनुभव के अनन्तर बुद्धि वादी पूर्व ने अन्तिम रूप से त्याग दिया है।

## सृष्टि-विकास-संहार : ब्रह्मा-विष्णु-महेश

प्राचीन भारतीय ऋषियों ने परात्पर सत्ता का अनुभव प्राप्त किया था। उन लोगों ने यह प्रतिपादित किया है कि जिस प्रकार विविध आकार-प्रकार के आभूषण एकमात्र सुवर्ण के ही विवर्ण हैं उसी प्रकार नानारूपात्मक जगत भी एकमात्र परात्पर सत्ता का विवर्त्त है। यह परात्पर सत्ता अपरिच्छेद्य और अद्वितीय है यह नाना-रूपात्मक संसार उसी सत्ता के 'एकोऽह बहुस्यां प्रजायेय' अर्थात् 'मैं एक अनेक होऊँ' इस प्रकार की इच्छा से उत्पन्न हुआ है। ईसाई मत में सृष्टि-सिद्धान्त मान्य है और यदि कहीं न कहीं विकास के प्रारम्भ होने का अन्तिम स्थल न माना जाय तो डार्विन विकासवाद भी अकल्प-नीय ही रहेगा। किसी पूर्व भावी कारण बिना कार्यारम्भ की कल्पना तर्क विरुद्ध होगी। अभाव से भाव पदार्थ की उत्पत्ति नहीं हो सकती एवं भाव का अभाव नहीं हो सकता। भारतीय ऋषियों को सृष्टि-स्थिति-संहृति की अनादि अनन्त परम्परा का बोध था। संसार का अत्यन्ताभाव नहीं हो सकता। प्रलयावस्था सुषुप्तावस्था के सदृश है। इस अवस्था को मृत्युवत् नहीं माना जा सकता क्योंकि पश्चात् की सृष्टि अकारण ही नहीं उत्पन्न हो सकती। सुषुप्तावस्था में मनुष्य को अपनी चेतना का भान नहीं होता किन्तु जागने के पश्चात् उसे पुनः ज्ञान के नये सिरे से जीवन प्रारम्भ नहीं करना पड़ता। उसे क, ख, ग की पाटी पुनः नहीं पढ़नी पड़ती। सोने जाने के पहिले के पूर्व की उसकी

समस्त भावनायें, ज्ञान, विचार, धारणायें, प्रतीतियाँ एवं अनुभूतियाँ उसके जागृत होते ही सजीव हो जाती हैं। वनस्पतियों का विकास निस्सन्देह लाखों वर्षों में हुआ है किन्तु आज प्रत्येक वृक्ष को बीज से विकसित होने में उतना ही समय नहीं लगेगा। आज के वृक्ष को डार्विन प्रतिपादित समस्त स्तरों में से होकर गुजरने की आवश्यकता नहीं है। वृक्ष का जीवन सीधे बीज से प्रारम्भ होता है। प्रलयावस्था में सभी तत्व प्रसुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। वे सर्वथा नष्ट नहीं हो जाते। सृष्टि-विकास का क्रम प्रारम्भ होते ही वे क्रियाशील को उठते हैं। प्रलयावस्था को विष्णु की निद्रा का प्रतीक माना गया है। अनादि,अनंत सतत अवाध रूप से प्रवर्त्तित सृष्टि-स्थिति-संहृति के क्रम को ब्रह्मा-विष्णु और महेश के रूप में प्रगट किया गया है। ये ही जगत की स्थिति काल में परस्परान्वित गुणों का नियन्त्रण करते रहते हैं। तमोगुण का नियन्त्रण रुद्र से होता हे, रजोगुण का ब्रह्मा से एवं सतोगुण का विष्णु से। सत्ता सर्वव्यापक है वह स्वंयं ही समस्त गुण है और साथ ही वह गुणातीत भी है। यही उसका स्वरूप है क्योंकि वह एकमेवाद्वितीय है और उसकी 'एकोऽहं बहुस्याम प्रजायेय'-'मैं एक अनेक होऊँ' की इच्छा से ही विश्व-प्रपंच प्रवर्त्तित हुआ है।

## पाश्चात्य विज्ञान भी भारतीय दर्शन तक पहुँच रहा है

एकमेवाद्वितीय परात्पर सत्ता से भारतीय अनेकता की ओर उन्मुख होते हैं। पश्चिम का विज्ञान अनजान में ही अनेकता के मध्य से एकता की ओर उन्मुख हो रहा है। यद्यपि पाश्चात्य विज्ञान अभी भी परात्पर सत्ता से पर्याप्त दूर है तथापि यह कहने में कोई बाधा नहीं है कि अनेकता की अपेक्षा व परात्पर सत्ता के अधिक निकट है। इस बात में सन्देह है कि भारतीयों के पास कभी भी पाश्चात्य प्रणाली की सुसज्ज प्रयोगशालायें रहीं अथवा नहीं। किन्तु उन लोगों के पास इस बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक उपकरणों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म एवं शक्तिशाली

उपकरण थे। इसके द्वारा वे ब्रह्म का सानिध्य एवं तदाकारता प्राप्त करते थे। अर्वाचीन विज्ञान को विवश होकर यह मानना पड़ता है कि अन्तिम सत्ता उसकी पहुंच के पर्याप्त परे है।

इस दृष्टि से विगत शताब्दी का वैज्ञानिक विकास उल्लेखनीय है। सर्वप्रथम विश्लेषण द्वारा वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला की सृष्टि में करीब पाँच लाख शुद्ध द्रव्य हैं। इन प्रत्येक द्रव्यों में वैज्ञानिकों ने करोड़ों मालेक्यूल्स molicules सूक्ष्मकणों को देखा जो परस्पर समान होते हुए भी दूसरे द्रव्यों के मालेक्यूलों से भिन्न थे। इन प्रत्येक द्रव्यों के कण भी किन्हीं दो या ९२ से अधिक रसायनिक तत्वों के सूक्ष्म कणों के सम्मिश्रण हैं। ये केमिकल एलिमेन्ट-रसायनिक तत्व भी ऐटम-Atom अर्थात् त्रसरेणुओं से बने हैं। प्रत्येक एलिमेण्ट के त्रसरेणु परस्पर समान होते हुए भी दूसरे एलिमेन्ट के त्रसरेणुओं Atom से भिन्न थे। प्रत्येक ऐटम में प्वायस्ट्रन, प्रोट्रन और न्यूट्रव का न्यूक्लियस हैं जिसके चतुर्दिक एलेक्ट्रन उसी का चक्कर लगाया करते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक विश्व ऐसे द्रव्यों से निर्मित है जिसके भीतर भार है एवं जो उसको गतिशील रखने वाली इनर्जी-शक्ति से अनुप्राणित होता रहता है। मैटरों में ऐसे अनेक कण हैं जो अपने व्यास की दूरी पर रहने वाले कणों को आकृष्ट किया करते हैं। किन्तु, निकट लाये जाने पर ये कण एक दूसरे को जोर से प्रक्षिप्त करते हैं। उन कणों में शक्ति रहने के कारण ही उनमें गति है। गति की शक्ति तेज स्वरूप ही है। शक्ति का विभिन्न रूप परस्पर परिवर्त्तनशील है बिना किसी प्रकार की हानि के यह शक्ति ताप, गति, विद्युत् एवं प्रकाश का रूप धारण कर सकती है। विज्ञान के मूलतत्व स्वरूप लम्बाई काल और mass मास-पुंज एक दूसरे से समाविष्ट होकर vilocity गति-आदि अनेक गुणों के जनक हो सकते हैं। विश्व की समस्त शक्तियों को ग्रैविटेशन, एलेट्रिक और मैगनेटिक के अन्तर्भूत किया जा सकता है। ऊँचाई लम्बाई

चौड़ाई त्रिविध परिणाम है और यह विश्व सदा असीम अवकाश में असीमित तीव्र गति से फैलता जा रहा है।

## मैटर और इनर्जी भी एक ही पदार्थ हैं

प्रायः पाँच लाख शुद्ध द्रव्यों की बहुलता से प्रारम्भ कर विज्ञान धीरे-धीरे मैटर और इनर्जी के द्वन्द्व तक पहुंचा। आगे बढ़ने पर विज्ञान ने अतीत में प्रतिपादित सिद्धान्तों को खण्डित कर दिया। यह क्रम अभी समाप्त ही हुआ है। बीसवीं शताब्दी के विज्ञान का बढ़ता चरण उन्नीसवीं शताब्दी के अनेक वैज्ञानिकों को धूलिधूसरित कर देगा। क्या भूतकाल का वैज्ञानिक कभी यह सोच सकता था कि मस्तिष्क रहने के कारण मनुष्य आज सोचता हुआ प्रतीत होता है और यह कि मनुष्य के सोचने की इच्छा के परिणामस्वरूप उसके असाधारण अवयव स्वरूप मस्तिष्क का विकास हुआ है। उसे एक क्षण के लिये भी यह विश्वास नहीं हो सकता था कि अवकाश नतोदर होने के कारण सीमित होता है। यह दो बिन्दुओं के मध्य की सबसे कम दूरी सीधी रेखा के बजाय नतोदर होती है, यह समानान्तर रेखायें मिल सकती है, यह प्रकाश की किरणें सीधी रेखा के रूप में नही चलतीं अपितु नतोदर रूप में चलती है, यह समस्त गतियाँ आपेक्षिक हैं, जो पदार्थ सम्बन्धी आपेक्षिक शब्दावली में ही सोची जा सकती हैं, यह लम्बाई Absolute अवच्छेदहीन नहीं हैं गति में परिवर्त्तन होने से इसका माप परिवर्त्तित हो जाता है, यह कि प्रत्येक पदार्थ में प्राकृतिक गति होने के कारण गति-Vilocity, आयाम, लम्बाई mass पुंज और समय आदि के तुलना के मानदण्ड स्थापन को सुकर बनाने वाले निर्देश के निश्चित बिन्दुओं का अभाव है, यह सापेक्षित गति द्वारा ही इनका माप हो सकता है, यह प्रकाश ही केवल मात्र वह परिवर्त्तन शून्य तत्व है जिसमें सापेक्ष्यता नहीं है एवं जिसकी गति अपरिवर्त्तित रहती हैं, यह समय चतुर्थ डाइमेन्शन है, यह

काल दिक का डाइमेन्शन है और दिक काल का डायमेन्शन है तथा दोनों में से कोई भी एक दूसरे के बगैर नहीं रह सकता, यह काल स्वयं Absolute नहीं है अपितु यह द्रष्टा की गति एवं स्थिति के सापेक्ष्य है, यह mass पूर्ण और सनातन नहीं है, यह गतिवृद्धि से mass महत्तर हो जाता है, यह सूक्ष्म Atom त्रसरेणुओं का भौतिक नियम समान रूप से आकाशीय विशाल पिण्डों पर भी लागू होता है, यह प्रकाश की गति से गुणित होने पर शक्ति mass के तुल्य होती है एवं पुनः प्रकाश की गति से गुणा करने पर केन्द्रीभूत इनर्जी के अतिरिक्त mass कुछ भी नहीं रह जाता और इस प्रकाश mass एवं energy अवस्था भेद से एक ही पदार्थ हैं।

विज्ञान ने अभी भी ऋषियों द्वारा प्रतिपादित चेतना विषयक सभी बातों का समर्थन नहीं किया है। किन्तु, सब कुछ होते हुए भी चेतना को अब केवल मैटर-भूत-की उपज नहीं माना जाता। अब इसका पृथक् अस्तित्व माना जाने लगा है, यद्यपि चेतना की प्रकृति विषयक खोज भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र से बाहर की बात है। मनोविज्ञान की एक शाखा में अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष वैज्ञानिक अन्वेषण किया जा रहा है अब 'छठवीं इन्द्रिय' की बात साधारण जनों को भी विस्तार के साथ समझ में आने योग्य हो गई है। इस प्रकार मार्क्स के आधार-स्वरूप सिद्धान्तों एवं परिकल्पनाओं का पूर्णरूपेण खण्डन हो चुका है।

मार्क्सवादी भूतवाद द्वारा जागरिक क्रान्ति किये जाने के पूर्व स्वयं मैटर की धारणा में ही क्रान्ति हो गई है। सर्व समर्थ मैटर ने बेचारे मार्क्स के साथ विश्वासघात कर दिया। क्या तथाकथित अतिशक्ति सम्पन्न मर्त्य लोग उस कार्य में सफल हो सकेंगे जहाँ स्वयं उनका ईश्वर ही असमर्थ सिद्ध हुआ है ?

## औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में शुक्रनीति

अपने अर्थ शास्त्र के प्रारम्भ में हीं कौटिल्य ने शुक्राचार्य के प्रति

आदरभाव प्रकट किया है । उसने यह भी कहा है कि उसका ग्रन्थ प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्मित पूर्व के प्रायः समस्त अर्थशास्त्रों का सार संग्रह है । अपना मतभेद प्रदर्शित करने के लिए उसने ११४ अपने पूर्ववर्त्तियों का उल्लेख किया है । इससे यह प्रकट होता है कि कौटिल्य के बहुत पूर्व ही भारत में ज्ञान की इस शाखा का उपयुक्त विकास हो चुका था और एतद्विषयक साहित्य वैज्ञानिक रूप से व्यवस्थित होकर व्यवहार विशेष में प्रयुक्त होने लगा था ।

## शुक्र-नीति का महत्त्व

शुक्रनीति के किसी निश्चित निर्माण काल का निर्धारण कठिन हे । अपने 'संस्कृत व्याकरण' की भूमिका में ह्विटनी ने लिखा है कि 'All dates given in Indian litarary history are pins set up to be boiled down again' अर्थात् 'संस्कृत के साहित्यिक इतिहास में उल्लिखित तिथियों को पुनः निर्धारित करने की आवश्यकता है' । इसके बावजूद भारतीय जन-जीवन पर शुक्र-नीति के प्रभाव-वर्णन में कोई अत्युक्ति भी नहीं है । यह बात सर्व विदित है कि छत्रपति महाराज शिवाजी अपने विभिन्न राजकीय कार्यों में शुक्र नीति के नियमों का अवलम्बन करते थे । उदाहरणार्थ दुर्ग-रचना, सेना-व्यवस्था (दुर्ग प्रकल्पनं चैव सैन्य प्रकरणं तथा), सचिवों के चुनाव तथा मन्त्रिमण्डल निर्माण (प्रकृत्यादिलक्षणम् । अष्टप्रकृतिभिर्युक्तोनृपः) सेना की व्यूह रचना (व्यूह प्रकपल्पनम्), आक्रमण करने (यात्रा प्रकल्पनम्), कूट युद्ध, आपद्धर्म तथा कापट्य व्यवहार आदि में वे शुक्र-नीति के ही अनुसार व्यवहार करते थे । इसमें जन-जीवन के लिए आवश्यक समस्त महत्वपूर्ण बातों एवं शासन के सभी प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन हुआ है । जनहित की कोई भी बात शुक्राचार्य से नहीं छूट पायी है । अतः इसमें औद्योगिक सम्बन्ध-विषयक किसी महत्पूर्ण समस्या का उपेक्षित रह जाना या छूट जाना एक आश्चर्य की बात होती ।

## ध्यान देने योग्य एक बात

यहाँ कुछ कहने के पहले एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है। प्रथम यह कि यदि कोई व्यक्ति प्राचीन भारतीय समाज की व्यवस्था की बीसवीं शताब्दी के यूरोपीय मापदन्ड से परखना चाहे तो यह उसकी एक भयङ्कर भूल होगी। यह उसी प्रकार की एक भोंडी बात होगी जैसे कि रामायणीय युद्ध को मार्क्सीय वर्गसंघर्ष की एक कड़ी बतलाना अथवा वेदों में पं० नेहरू की पञ्चवर्षीय योजनाओं की आलोचना के वर्त्तमान होने का दावा करना।

दूसरे यह कि संस्कृत के अनेक शब्दों के पर्यायवाची शब्द अंगरेजी में नहीं हैं। इसी कठिनाई के कारण पूर्व और पश्चिम के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक आधारों में महान अन्तर है। अब आम तौर पर यह मान लिया गया है कि 'धर्म' का पर्यायवाची शब्द 'रिलीजन' नहीं है एवं 'संस्कृति' का पर्यायवाची शब्द 'कल्चर' नहीं है। इसी प्रकार प्राचीन 'स्वामी' शब्द के भाव को आधुनिक काल का 'इम्प्लायर employer' शब्द तथा 'भृत्य' के भाव को 'इम्प्लाई employee' शब्द नहीं प्रकट कर सकता।

## श्रेणी-प्रबन्ध

व्यवस्था में 'इम्प्लायर-इम्पलाई अर्थात मालिक-मजदूर' सम्बन्ध के अभाव स्वरूप भारतीय श्रेणी की विशेषता को देखते हुए यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि श्रेणी के सदस्यों के आन्तरिक सम्बन्ध को पारिभाषिक अर्थ में 'इण्डस्ट्रियल' नहीं कहा जा सकता। कौटिल्य ने कहा है कि श्रेणी की सम्पूर्ण कमाई समस्त की होती है। उस कमाई का विभाजन या तो पूर्व निर्धारित शर्त्तों के अनुसार होता था अथवा समान रूप से। यथाः 'संघभृतः संभूयसमुत्थातारो वा यथा संभाषितं वेतनं समं वा विभजेरन्। शुक्र श्रेणियों की स्वशासित विशेषता पर ज़ोर देते हैं। श्रेणी के सदस्य अपने निजी विधान द्वारा आन्तरिक विवादों का

निपटारा करते थे। किसी भी बाहरी शक्ति या व्यक्ति को यह कार्य करने का अधिकार नहीं था यथा—

"कीनाशाः कारुकाः शिल्पिकुसीदिश्रेणिनर्तकाः।
लिङ्गिनस्तकराः कुर्युः स्वेन धर्मेण निर्णयम्॥
अशक्यो निर्णयो ह्यन्यैस्तऽजैरेवतु कारयेत्।"

इन श्रेणियों के आन्तरिक प्रबन्ध में राज्य कोई पस्तक्षेप नहीं कर सकता था। श्रेणियों की इस विचित्र विशेषता के कारण वे प्रकृत विवाद से बहिर्भूत ही हैं।

## आदर्श सम्बन्ध

शुक्र के मतानुसार आदर्श सेवक वह है जो आपत्ति में स्वामी का साथ नहीं छोड़ता एवं आदर्श मालिक वह है जो मजदूर के हितों की सुरक्षा एवं दृढ़ता के हेतु मृत्यु का भी अलिङ्गन करने को प्रस्तुत हो। इस प्रसङ्ग में शुक्र को तत्काल धर्मप्रवण राजा रामचन्द्र और उनके यशस्वी भृत्य वानरों का स्मरण हो आया है। यथा—

"भृत्यः स एव सुश्लोको नापत्तौ स्वामिनं त्यजेत्।
स्वामी स एव विज्ञेयो भृत्यार्थे जीवितं त्यजेत्॥
न राम सदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत।
सुभृत्यता तु यन्नीत्या वानरैरपि स्वीकृता॥"

यह उद्धरण देकर शुक्राचार्य ने एक प्रश्न उठाया है। उनका कहना है कि यदि किसी राष्ट्र के पीठ में छुरा भोंकने के कार्य में पंचमांगियों में एकता हो सकती है तो क्या राष्ट्रशत्रु के निर्मूलनार्थ राज्य एवं उसके कर्मचारियों में एकता का होना असंभव है?

'अपि राष्ट्रविनाशाय चोराणामेकचित्तता।
शक्या भवेन्न किं शत्रुनाशाय नृपभृत्ययोः॥'

संभवतः यह प्रश्न आज भी कम महत्व का नहीं है।

## भृति भेद

कार्य के अनुसार, काल के अनुसार एवं कार्य और काल दोनों के अनुसार मजदूरी की दर निश्चित होती थी। यथा—

"कार्यमाना कालमाना कार्यकालमितित्रिधा।
भृतिरुक्ता तु तद्विज्ञैः सादेया भाषिता यथा॥

## कार्यानुसार वेतन

'अयं भारस्त्वया तत्र स्थाप्यस्त्वेतावतीं भृतिम्।
रास्यामि कार्यमाना सा कीर्तिता' तद्विवेचकैः॥

## कालानुसारी भृति

'वत्सरे वत्सरे वापि मासि मासि दिने दिने।
एतावतीं भृतिं तेऽहं दास्या मीति च कालिका॥'

## कार्यकालानुसारी भृति

"एतावताकार्यमिदं कालेनापि त्वयाकृतम्।
भृतिमेतावतीं दास्ये कार्यकालमिताच सा॥"

## भृति दान काल

भारत में तीन प्रकार का काल परिणाम मान्य है, सौर चान्द्र एवं सावन। भृति दान के सम्बन्ध में सौर मान का अनुसरण होता था, सूद की गणना में चान्द्रमास का दैनिक भृति के देने में सावन परिमाण का अनुसरण होता था। यथा—

'कालमानं त्रिधा ज्ञेयं चान्द्रं सौरं च सावनम्।
भृतिदाने सदा सौरं चान्द्रं कौसीदवृद्धिषु॥
कल्पयेत् सावनं नित्यं दिन भृत्येऽवधौ सदा।'

## कर्मचारियों का भेद

कर्मचारी तीन प्रकार के होते हैं। (१) पूर्ण ईमानदार (२) अधिक प्राप्ति के लोलुप एवं (३) उत्तम वेतन प्राप्त करते हुए भी

स्वामी के साथ विश्वासघात करने वाले। यथा—

'त्रिविधो भृतकास्तदवदुत्तमो मध्यमोऽधमः।'

## कर्मचारी का स्तर

कर्मचारी तीन स्तर के होते हैं। (१) अकुशल (२) अर्धकुशल (३) कुशल। इनकी योग्यता के अनुसार वेतन का दर निश्चित होता है। यथा—

मन्दो मध्यस्तथा शीघ्रस्त्रिविधो भृत्य उच्यते।
समा मध्या च श्रेष्ठा च भृतिस्तेषां क्रमात् स्मृता॥'

## वेतन का दर-निर्धारण

'अवश्यपोष्यभरणा भृतिर्मध्या प्रकीर्तिता।
परिपोष्या भृतिः श्रेष्ठा समाशाच्छादनार्थिका॥
भवेदेकस्य भरणं यया सा हीनसंज्ञिका।
यथा यथा तु गुणवान् भृतकस्तद्भृतिस्तथा॥
संयोज्या तु प्रयत्नेन नृपेणात्महिताय वै।"

जीवन के लिये आवश्यक साधनों की प्राप्ति में समर्थ भृति को सामान्य, पर्याप्त से अधिक भोजन-वस्त्र जुटाने में भृति को श्रेष्ठ एवं केवल एक व्यक्ति का पेट भरने योग्य मजदूरी को हीन दर्जे की मानी जाती है। मजदूरी का सम्बन्ध कर्मचारी के गुण एवं योग्यता से होना चाहिये। यह बात राज्य के भी हित में है।

## उचित मजदूरी

'अवश्यपोष्यावर्गस्य भरणं भृतकाद्भवेत्।
तथा भृतिस्तु संयोज्या तद्योग्या भृतकाय वै॥

अर्थात् किसी कर्मचारी को इतना वेतन देना चाहिए जिससे वह जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्त्ति कर सके।

## जवानों की भृति

शिक्षित सैनिकों को पूर्ण वेतन मिलना चाहिये एवं ट्रेनिङ्ग प्राप्त करने वाले वर्ग को आधा वेतन मिलना चाहिये। यथा—

'सैनिकाः शिक्षिता ये ये तेषु पूर्णां भृतिः स्मृता।
व्यूहाभ्यासे नियुक्ता ये तेष्वर्धां भृतिमावहेत्॥

युद्ध के समय में सैनिकों के वेतन में २५ प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिये। यथा—

'याने सपादभृत्या तु स्वभृत्या वर्धयन् नृपः।'

विशेष सेवाओं के उपलक्ष में पारितोषिक एवं वेतनवृद्धि प्राप्त होनी चाहिये। यथा—

"प्रत्यग्रे कर्मणि कृते योधैर्दद्याद् धनं च तान्।
परितोष्यं वाऽधिकारं क्रमतोर्हं नृपः सदा॥"

## वेतन अदागी

'न कुर्याद् भृतिलोपं तु तथा भृतिविलम्बनम्।'

अर्थात् भृति का लोप न करना चाहिये और न वेतन देने में विलम्ब करना चाहिये।

## वेतन का लेखा रखना

वेतन का नियमित रजिस्टर रखना चाहिए। इसमें प्रत्येक कर्मचारी के, जाति, आकृति, प्रदेश, ग्राम, नगर कार्यकाल लिखने का समय, वेतन दर एवं प्रदत्त वेतन का उल्लेख होना चाहिए। अथा—

'जात्याकृतिवयोद्देशग्रामवासान्विमृश्य च।
कालं भृत्यवधिं देयं दत्तं भृत्यस्य लेखयेत॥'
'कति दत्तं हि भृत्येभ्योऽवेतनं पारितोषिकम्।
तत्प्राप्तिपत्रं गृह्णीयाद् दद्याद् वेतनपत्रकम्॥

वेतन के अतिरिक्त दिये गये पारितोषिक की रसीद ले लेनी चाहिये और कर्मचारी को उसके वेतन का एक चार्ट दे देना चाहिये।

## वर्गानुसार पदक

विभिन्न श्रेणियों और स्तरों के लिए विभिन्न धातुओं का पदक होना चाहिए। यथा—

'यत्कार्ये विनियुक्ता ये कार्यकैरङ्कयेच्च तान्।
लोहजैस्ताम्रजैरीतिभवैः रजतसंभवैः ॥'

## औद्योगिक विवाद

अल्प-वेतन, रुक्ष व्यवहार, अपमान, अपशब्द प्रयोग अधिक अर्थ दण्ड का आरोपण एवं कठोर दण्ड ये सभी औद्योगिक झगड़ों के कारण हैं। यथा—

'ये भृत्या हीनभृतिकाः शत्रवस्ते स्वयंकृताः।
परस्य साधकास्तेतु छिद्रकोशप्रजाहराः ॥
वावपारुष्यात् न्यूनवृत्त्या स्वामी प्रबलदण्डतः।
भृत्यं प्रशिक्षयेन्नित्यं शत्रुत्वं त्वपमानंतः ॥

भृतदान से संतुष्ट, मान से परिवर्धित, मृदुवाणी से सान्त्वना दिये गयु कर्मचारी कभी भी राजा को नहीं छोड़ते। यथा—

'भृतिदानेन संतुष्टाः मानेन परिवर्धिताः।
सांत्विता मृदुवाचाये न त्यजंत्यधिपं हि ते ॥'

साक्षी, लेख एवं मुक्ति के द्वारा औद्योगिक विवादों का निर्णय करना चाहिये। यथा—

दत्तादत्तेषु भृत्यानां स्वामिनां निर्णये सति।
साक्षिभिर्लिखितेनाथ भुक्त्या चैतान् प्रसाधयेत् ॥'

किसी एक ही शास्त्र का अध्ययन करने वाला कार्य का निर्णय नहीं कर सकता। अतः किसी बहुज्ञ को यह कार्य सौंपना चाहिये।

'एकं शास्त्रमधीयानो न विद्यात् कार्य निर्णयम्।
तस्माद् बह्वगमः कार्यो विवादेषूत्तमों नृपैः ॥'

राग, लोभ, भय, द्वेष एवं एकान्त श्रवण ये पाँच तत्व किसी विवाद के निर्णय में होने वाले पक्षपात के कारण हैं। यथा—

'पक्षपाताधिरोपस्य कारणानि च पंच वै।
रागलोभभयद्वेषाः वादिनोश्च रहः श्रुतिः ॥'

## अवकाश का नियम

कर्मचारियों को दिन और रात में विश्राम का पर्याप्त समय होना चाहिये। प्रत्येक पर्व पर सवैतनिक अवकाश मिलना चाहिये। यदि अत्यावश्यक कार्यवश पर्व पर अवकाश न मिले तो श्राद्धदिवस पर सवैतनिक अवकाश मिलना चाहिये। यथा—

'भृत्यानाँ गृहकृत्यार्थं दिवायामं समुत्सृजेत्।
निशियामत्रयं नित्यं दिनभृत्येऽर्धयामिकम् ॥
तेभ्यः कार्यं कारयति ह्युत्सवाद्यैर्विना नृपः।
अत्यावश्यं तूत्सवेऽपि हित्वा श्राद्धदिनं सदा ॥

## सवैतनिक वार्षिक अवकाश

'सेवांविना नृपः पक्षं दद्याद् भृत्याय वत्सरे'। अर्थात् एक साल में भृत्य को १५ दिनों का सवैतनिक अवकाश देना चाहिये।

## रुग्णवस्था का अवकाश

लम्बी बीमारी की अवस्था में जो व्यक्ति ५ वर्षों से अधिक सेवा कर चुके हों वे तीन मास तक अपने वेतन का तीन-चौथाई अंश प्राप्त कर सकते हैं किन्तु छः मास के बाद स्वामी बीमारी की सुविधा देने को बाध्य नहीं है। यदि कोई कर्मचारी एक सप्ताह तक रुग्ण रहे तो उसका वेतन नहीं काटा जा सकता। यदि कोई कर्मचारी स्थायी रोग का शिकार हो जाय तो उसके स्थान पर उसके द्वारा मनोनीत व्यक्ति कार्य कर सकता है। किसी अति योग्य कर्मचारी को अपने पूर्ण रोगावधि में आधी भृति मिलेगी। यथा—

'पदहीनां भृतिं त्वार्तें दद्यात्मासिकीं ततः ।
पञ्चवत्सरभृत्ये तु न्यूनाधिक्यं यथा तथा ॥
षाण्मासिकीं तु दीर्घार्तिं तदूर्ध्वं न च कल्पयेत् ।
नैव पक्षार्धमार्तस्य हातव्यालपापि वै भृतिः ॥
शश्वत्सदोषितस्यापि ग्राह्यः प्रतिनिधिस्ततः ।
सुमहद्गुणिनं त्वार्तं भृत्यर्धं कल्पयेत्सदा ॥'

## प्राविडेण्ट फन्ड का सिद्धान्त

'षष्ठांशं वा चतुर्थांशं भृतेर्भृत्यस्य पालयेत् ।
दद्यात्तदर्धं भृत्याय द्वित्रिवर्षेऽखिलं तु वा ॥'

अर्थात् किसी कर्मचारी के षष्ठांश या चतुर्थांश को काटकर जमा करना चाहिये और इस प्रकार एकत्रित सम्पूर्ण धन को दो या तीन वर्ष के अन्त में उस कर्मचारी को दे देना चाहिये।

## पेंशन और परिवारिक भत्ता

चत्वारिंशत् समानीताः सेवया येन वै नृपः ।
ततः सेवां विना तस्मै भृत्यर्धं कल्पयेत्सदा ॥ याव-जीवं···

अर्थात् चालीस वर्ष तक सेवा कर चुकने वाले भृत्य को उसके जीवन भर वेतन का आधा देना चाहिये।

'यावज्जीवं तु तत्पुत्रेऽक्षये बाले सदर्धकम् ।
भार्यायां वा सुशीलायां कान्यायां वा स्वश्रेयसे ॥

कर्मचारी की मृत्यु हो जाने पर उसकी पत्नी या लड़की को कर्मचारी के वेतन का आधा उस समय तक देना चाहिए जब तक उसका लड़का नाबालिग रहे।

## सेवा में प्राथमिकता

'स्वामिकार्ये विनिष्टो यस्तत्पुत्रो तद्भृतिं वहेत् ।
यावद् बालोऽन्यथापुत्रगुणान् दृष्ट्वा भृतिं वहेत् ॥'

अर्थात् स्वामी के कार्य में जिस कर्मचारी की मृत्यु हो जाय उसका पुत्र स्वयमेव अपने मृत पिता के वेतन का हकदार हो जाता है। बालिग होने पर उसकी योग्यता के आधार पर उसका वेतन निर्धारित होना चाहिये।

## बोनस और एफिसियेन्सी बोनस

'अष्टमांशं पारितोष्यं दद्याद् भृत्याय वत्सरे।
कार्याष्टमांशं वा दद्यात् कार्यं द्रागधिकं कृतम् ॥

अर्थात् कर्मचारी को प्रतिवर्ष अपनी कमाई का अष्टमांश पारतोषिक रूप में मिलना चाहिए। यदि उसका कार्यविशेष योग्यता का हो तो उसे कार्यमान भृति का अष्टमांश पारितोषिक मिलना चाहिए।

## कर्मचारियों के साथ सामान्य व्यवहार

सुभोजनैस्सुवसनैस्ताम्बूलैश्च धनैरपि।
कांश्चित्सुकुशलप्रश्नैरधिकारप्रदानतः ॥
वाहनानां प्रदानेन योग्याभरणदानतः।
छत्रातपत्रचमरदीपिकानां प्रदानतः।
क्षमया प्रणिपातेन मानेनाभिगमेन च।
सत्कारेण च ज्ञानेन ह्यादरेण शमेन च ॥
प्रेम्णा समीपवासेन स्वार्धासनप्रदानतः।
संपूर्णासनदानेन स्तुत्योंपकारकीर्तनात् ॥

अर्थात् यथासमय सुन्दर भोजन, वस्त्र, ताम्बूल, धन कुशल-क्षेम, अधिकार-प्रदान, वाहन-प्रदान, योग्याभरणदान छत्र, चमर, दीपिका का दान, क्षमा, प्रणिपात, मान-अभिगमन, सत्कार, ज्ञान, आदर, शम, प्रेम के साथ समीप बैठाना, अर्धासनदान, सम्पूर्णसिन दान, स्तुति तथा उपकार कीर्तन के द्वारा कर्मचारियों को सन्तुष्ट रखना चाहिए।

## उल्लेखनीय सामान्य भावना

शुक्रनीति के उपर्युक्त प्रासङ्गिक बातों की आलोचना की नहीं जा

सकती । मनोरञ्जक विवरण के अलावा इसमें विद्यमान भावना विशेष उल्लेखनीय है । सम्पूर्ण शुक्रनीति में इसी भावना का दर्शन होता है । उदाहरणार्थ किसानों के हित की दृष्टि से यह विधान किया गया है कि न्यूनतम मालगुजारी का निर्धारण इस प्रकार करना चाहिए कि जिससे जमीन जोतने वालों का उच्छेदन हो जाय अपितु, इसके विपरीत उनके हित की वृद्धि हो । यथा—

'हरेच्च कर्षकाद्भागं यथा नष्टो भवेन्न सः ।
लभादिक्षयंकर्षकादेर्यथा दृष्ट्वा हरेत् फलम् ।

कष्ट के समय में किसानों को राज्य की ओर से सहायता मिलनी चाहिये । यथा—व्यवहारे हता यदि । राजा समुद्धरेत्तांस्तु तथान्दांश्च कृषीवलान् ॥

निस्सन्देह समय का परिवर्तन हो गया है किन्तु मनुष्य की प्रकृति पूर्ववत् ही है । कभी भी हिन्दू ने इस बात का हठ नहीं किया है कि प्राचीन ग्रन्थों के नियमों का सर्वांश में पालन किया जाय । धर्मग्रन्थ-वादिता हिन्दुत्व के प्रतिकूल है । यथा 'नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।' उत्पादन प्रणाली और साधनों में हुए अर्वाचीन परिवर्त्तनों की दृष्टि से विवरणों का पुनर्स्थापन हिन्दु-जीवन के अनुकूल सिद्ध होगा । किन्तु, हमें यह न भूलना चाहिये कि वस्तुगत-परिवर्त्तन होते हुए भी मनुष्य का मन अपरिवर्त्तित ही रहता है । अस्तु इस नीति के निर्देशक सिद्धान्त आज भी उतने ही सहायक हैं जैसे ग्रन्थ निर्माण काल में सहायक रहे होंगे वर्तमान भारत में औद्योगिक सम्बन्धों के विविध पक्षों को शुक्रनीति की यथार्थ भावना को समझना आत्मसात करना चाहिए ।

## भगवा ध्वजा क्यों ?

कई ओर से यह पूछा जाता है कि भारतीय मजदूर संघ ने भगवा-ध्वज को अपना झण्डा मानने का निश्चय क्यों किया । यह कोई आकस्मिक प्रश्न नहीं है । क्योंकि श्रमिक आन्दोलन के प्रतीक रूप से भगवा झण्डे

का प्रयोग पहलेपहल हीं हो रहा है। इसके महत्व या संदेश से अपरिचित लोगों द्वारा भा.म.सं. के इस निश्चय का औचित्य पूछना उचित भी है।

प्रारम्भ में यह कह देना उचित है कि इस भूमि की हर एक सन्तान भगवा को अपना राष्ट्रीय निशान मानती है। भौतिकवादी पश्चिम में राज्य, समाज को प्रभावित करता है। धर्म के इस देश में समाज राज्य को प्रभावित करता रहा है। भारत में कभी भी सर्वग्रासी राज्य नहीं रहा। अपने व्यक्तिगत या समूहगत स्वार्थों की रक्षा के लिये राजकीय सूत्रों को भी स्वाधिकृत करने की कामना न रखने वाले दार्शनिकों एवं सन्तों द्वारा निर्मित सामाजिक विधान के संरक्षण का कार्य राज्य द्वारा होता था। स्वयं राज्य का शासन भी उसी विधान से होता था। उस विधान से राज्याधिकारियों को हटते देखकर समस्त समाज तुरन्त ही विरोध करता था। राज्याधिकारियों के कृत्य की राज्य धर्म-विरोधी कर्म के रूप में आलोचना की जाती थी। जनापवाद को कठिन दण्ड माना जाता था और समाज के शस्त्रागार में सामाजिक बहिष्कार का रूप अतिप्रबल हथियार था। प्रत्येक राजा या सम्राट् अपना पृथक राजकीय ध्वज निर्धारित करने को स्वतन्त्र था किन्तु किसी भी राजकीय ध्वज को राष्ट्रीय ध्वज की पवित्रता नहीं प्राप्त हो सकती थी। यद्यपि यह बात सत्य है कि भगवाध्वज में ही विभिन्न चिह्न देकर शासकगण उसे अपना राज्यध्वज बना लेते थे। इसका कारण था राज्य पर समाज का प्रभाव होना। उदाहरणार्थ— हरिहर और बुक्का या प्रतापरूद्र एवं छत्रपति शिवाजी ने इसे अपना ध्वज माना था क्योंकि स्मृति से भी परे के काल से यह राष्ट्रध्वज के रूप में मान्य रहा। कोई यह नहीं कह सकता कि भारत के प्रथम शासक इन्द्र का भी ध्वज भगवा नहीं था। इन परिस्थितियों में यह स्वाभाविक बात थी कि देशव्यापी विभिन्न राज्यों के नागरिक गर्व के साथ राष्ट्रीय भगवाध्वज के सम्मान में अपने-अपने राज्यों के ध्वजों को भी फहराया करते रहे।

शासकों का सम्मान अपने ही राज्य की सीमा में होता था। परन्तु गेरुआ वस्त्रधारी सन्यासी समस्त राज्यों के निवासियों का सम्मान भाजन था। सन्यासी यथार्थ में विश्व का नागरिक था। 'स्वदेशो भुवनत्रयम्। इसी कारण उसे सार्वभौम आदर प्राप्त था। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि सन्यासियों ने गेरुआ रङ्ग को अपना प्रतीक बनाया। सन्यासियों के ही सदृश इस देश का राष्ट्रभाव भी अन्तर्राष्ट्रीयता या सार्वभौमिकता का प्रतिरूप था। मानव इतिहास में अन्तर्राष्ट्रीयता का उद्भव सर्वप्रथम हिन्दुत्व के ही रूप में हुआ क्योंकि उस समय संसार में भारत ही एकमात्र सभ्य देश था। हिन्दू-संस्कृति विश्व संस्कृति से अभिन्न थी। अस्तु मानव इतिहास के प्रारम्भ में ही हिन्दू राष्ट्रीयता के रूप में प्रकट होने वाले विश्वसंस्कृति के प्रतीक रूप से भगवे ध्वज का ग्रहण हुआ है। अतः राष्ट्रीयकरण जिसका अर्थ श्रमिक क्षेत्र तथा औद्योगिक सम्बन्धों का मानवीकरण होता है, उस अर्थ को चरितार्थ करने के लिये कृतसंकल्प भा० म० संघ द्वारा परम्परागत भगवाध्वज को अपने पथ प्रदर्शक एवं स्फूर्तिदाता के रूप में मानना सर्वथा स्वभाविक है।

हमारे राष्ट्र में अनेक ऐसी धारणाओं और व्यवस्थाओं का विकास हुआ जो अनेक अंशों में अतुलनीय है। पश्चिम के नवीन उत्पन्न राष्ट्र अभी भी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं के हल करने में परीक्षण और स्खलन की पद्धित का प्रयोग कर रहे हैं। किन्तु, भारतीयों को इस बात का विशेष सौभाग्य प्राप्त है कि इन लोगों को धर्म के अंगभूत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक ठोस और मौलिक सिद्धान्तों का साक्षात्कार हुआ। हम सभी श्रमिक आजकल प्रारम्भिक पारिश्रमिक, मँहगाई भत्ता, बोनस, वृद्धि, कार्यकाल, कार्यभार, अवकाश, सामाजिक सुरक्षा, श्रमिक-कल्याण आदि विषयक अनेक माँगों को रख रहे हैं। ये सभी माँगें निस्संदेह उचित एवं आवश्यक हैं। किन्तु, इस मांगतालिका से केवल छिद्रावरोध मात्र का कार्य होता है। इस प्रकार

समस्या का स्थायी हल नहीं हो पाता। संसार के श्रमिकों को तब तक चैन नहीं मिल सकता जब तक न्याय, समानता और सद्भाव के अपर आश्रित किसी उपयुक्त सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का उदय नहीं हो जाता। क्या इस उद्देश्य की पूर्त्ति हेतु हम पश्चिम के किसी अपूर्णवाद को अपना लें ?

हम 'लाभ के लिये उत्पादन' सिद्धान्त पर आधारित पूँजीवाद को नहीं अपना सकते। इसमें माँग तौर पूर्त्ति का नियम कार्यशील रहता है जिससे मूल्य से उत्पादन को नियन्त्रित करना पड़ता है। इसी प्रकार हम कम्युनिज्म को भी नहीं अपना सकते। इसमें व्यक्तिगत लाभ की प्रवृत्ति के स्थान पर सामाजिक प्रयोग की व्यवस्था की जाती है। किन्तु, इस व्यवस्था में राजकीय अधिकारियों के हाथ में समस्त आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो जाती है। अर्थात् राज्याधिकारियों के ही हाथों में उत्पादन एवं विभाजन का समस्त अधिकार चला जाता है। एकमात्र राज्य ही, उत्पादन, उत्पादन-व्यवस्था, वेतन एवं भत्ता आदि के देने, उत्पादन तथा उपभोग में समन्वय स्थापन के ब्याज से मूल्य निर्धारणादि का अधिकारी हो जाता है। ये दोनों ही व्यवस्थाएँ असामाजिक हैं एवं कटु आलोचना की पात्र हैं। यद्यपि अनेक कारणों में 'योग्यतानुसार काम एवं आवश्यकतानुसार पूर्त्ति, का सिद्धान्त प्रत्यक्ष रूप में आकर्षक प्रतीत होता है किन्तु इसमें उत्पादन एवं विभाजन पर पूर्व अधिकार रखने वाले सर्वग्रासी राज्य की सत्ता अनिवार्य है। 'योग्यतानुसार काम' के अनुसार काम लेने वाला कौन होगा ?

योग्यता का निर्धारण कौन करेगा ? सबकी आवश्यकता का निर्धारण कौन होगा ? हर एक को आवश्यकतानुसार देने वाला कौन होगा ? और यदि किसी मानवीय निमित्त द्वारा यह सबसे महत्वपूर्ण काम पूर्ण भी हो जाय तो क्या वह निमित्त उन सबका स्वाधीन बन जायेगा जिनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति उसके द्वारा होती है ? इस सर्वातिशय शक्तिशाली निमित्त का निमन्त्रण कौन करेगा ? क्या

सर्वशक्ति सम्पन्न राज्य के लिये यह सम्भव है कि वह समस्त मानवीय अवयवों से वैधानिक दबाव के द्वारा अधिकतम सम्भव कार्य करा ले या मनुष्य की सतत् वृद्धिगत समस्त आवश्यकताओं की पूर्त्ति कर दे ?

धर्म की दृष्टि से बाह्य दबाव नहीं अपितु कर्त्तव्यपरायणता की आन्तरिक भावना ही अधिकतम उत्पादन-प्रयास के हेतु आवश्यक निर्भर योग्य स्रोत है। भगवाध्वज के धर्मराज में प्रत्येक व्यक्ति मनुष्य के लिये सम्भव सीमा तक प्रयास करता है क्योंकि इसी से धर्मपथ का पालन होता है। पुनश्च यह भी विधान किया गया है कि उत्पादन रूप कर्त्तव्य करने में मनुष्य फल की आकांक्षा न रखे और यह कि अपनी उत्पादित समस्त सामग्री को समष्टिगत भगवान के चरणों में अर्पित कर दें। अस्तु इस प्रक्रिया में किसी मानवीतन्त्र को यह अधिकार नहीं दिया गया है कि जिससे कोई व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार अधिकतम परिश्रम करने को विवश किया जा सके। इसके विपरीत प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छा से समाज को अपने अधिकतम परिश्रम का फल समर्पित कर देता है।

इसके अतिरिक्त कोई ऐसा भी तत्व नहीं दृष्टिगत होता जो हर एक व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार वितरण करने का कार्य कर सके। धर्मराज्य में समष्टि को समर्पित करने के पश्चात् शेषांश को व्यक्ति भगवत्प्रसाद समझ कर ग्रहण करता है। अर्थात् धर्मराज्य के नागरिक यज्ञशिष्टाशन करने वाले होते हैं। 'श्री कृष्णार्पण मस्तु' की एकमात्र भावना ही भारतीयों के समस्त उत्पादन-प्रयासों में सन्निहित रहती है। "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' इस उपनिषदीय वाक्य में भारतीयों के अन्तःकरण की वह भावना प्रतिफलित हुई है जिससे वे समाज से कोई वस्तु ग्रहण करते हैं। व्यक्ति को स्वयं शासित कर्त्तव्यपरायण भक्त बनाकर धर्म एक ओर लाभ उठाने की प्रवृत्ति, प्रतियोगिता और शोषण का उन्मूलन करता है तो दूसरी ओर दबाव और सत्तावाद को भी समाप्त करता है।

धर्म के ऊपर आधारित यहाँ की समाज व्यवस्था विदेशियों के सहस्र-वर्षीय घोर विध्वंस प्रयासों के बावजूद भी बनी ही रही। ग्यारह सौ वर्षों से भी अधिक काल तक भारतीयों के युद्धरत रहने के कारण इस व्यवस्था में यत्रतत्र कुछ बुराइयाँ प्रविष्ट हो गई हैं। किन्तु, मुख्य ढाँचा अब भी दृढ़ है। इसके विपरीत पूंजीवादी ढांचा दोसौ वर्षों का भी दबाव बर्दाश्त न कर सका एवं समय-समय पर प्रकट होने वाले पर्ज, आन्तरिक विद्रोह एवं लौहावरण के पीछे होने वाले विशाल नर संहार के द्वारा यह प्रकट होता है कि लेनिन-निर्मित भवन भी चालीस वर्षों में ही लड़खड़ाने लगा है।

मार्क्स ने भारतीय-व्यवस्था की स्थिरता को गतिहीनता समझने की भूल की है। उसमें भारतीय मनोविज्ञान एवं समाज व्यवस्था के अध्ययनार्थ आवश्यक धैर्य का अभाव था। भारतीय व्यवस्था की जांच किये बिना ही उसने अपना निष्कर्ष निकाल लिया है। बाद में जाँच पड़ताल में प्राप्त होने वाले तथ्यों को इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया गया है कि वे पूर्व में ही निर्मित सिद्धांतों के उपयुक्त हो जायँ। इस कल्पनात्मक प्रवृत्ति के कारण ही मार्क्स हिन्दू व्यवस्था के सही दृष्टिकोण को प्राप्त करने में असमर्थ रहा। अपने इस अवैज्ञानिक दृष्टिकोण के ही कारण मार्क्स ने हिन्दू विचारों एवं संस्थाओं का जो मूल्याङ्कन किया वह सदोष हो गया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वह हिन्दूधर्म के आंतरिक सामर्थ्य एवं योग्यता को समझ पाने में बुरी तरह असफल हुआ। क्या उसे कभी यह कल्पना हुई होगी कि उसके सपने की वर्गविहीन-एवं राज्यशून्य अवस्था एक नित्य परिवर्तनशील वयवस्था होगी अर्थात उसकी कल्पित-व्यवस्था अव्यवस्था ही होगी। क्योंकि यदि उसकी कल्पित 'कम्यूनिज़्म की उच्च अवस्था' स्थायित्व प्राप्त करती है तो उसे गतिशून्य ही कहा जायगा। यह एक उल्लेखनीय बात है कि समस्त विद्रोहों का सम्पूर्ण सफाया करने वाले सर्वग्रासी छत्तीस वर्षों के निरन्तर शासन के बावजूद भी रूसी नेताओं को स्टालिन की मृत्यु

के पश्चात् अव्यवस्था फैलने का भय बना रहा। अनेक राजनीतिक झञ्झावातों का सामना करने वाली हिन्दू समाज - व्यवस्था इस परिस्थिति का अपवाद नही है। राज्यों का उदय अस्त होता रहा किन्तु भारतीय समाज व्यवस्था सनातन रूप से बनी रही। किसी राजनीतिक उथल पथल से इसका आधार अछूता ही रहता है। यह अर्थसत्ता या राजसत्ता के ऊपर निर्भर नहीं, अपितु व्यक्ति एवं समाज के स्वेच्छा-जन्य धर्मनिष्ठा के ही ऊपर यह आधारित है। पूँजीवाद की प्रमुख विशेषता है भ्रष्ट प्रतियोगिता। कम्युनिज्म विशेषता है दमन एवं धर्म विशेषता एवं प्रबुद्धता। प्रबुद्धता की दृढ़ता ही मानव कल्याण के लिये धर्म की मुख्य देन है।

इस पृष्ठभूमि पर यह समझना सरल होगा कि हिन्दूधर्म ने क्योंकर एक ऐसे सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को विकसित किया जिसने कर्म को भगवत्पूजा का पवित्र रूप बना दिया। इस व्यवस्था में मन्दी के समय भी काम की गारण्टी थी। प्रत्येक व्यक्ति शतहस्त समाहर सहस्रहस्त समाकिर' के अर्थात् सौ हाथों से एकत्रित करो और हजार हाथों से वितरित करो' के आदर्श से प्रेरित होता है। समाज की विशेष आवश्यकता के अनुसार व्यक्ति की रुचि संबद्ध रहती है। अतः इस व्यवस्था में सभी व्यक्तियों की समवेत योग्यता और सम्पूर्ण समाज की आवश्यकता में समन्वय किया गया, सामाजिक विधान के कठोर पालन और व्यक्तित्व के उन्मुक्त विकासोन्मुख प्रगटीकरण में समन्विति स्थापित हुई। गुणकर्मानुसार सामाजिक उत्तरदायित्व के विभाजन से स्वयमेव सामाजिक अधिकारों का विकेन्द्रीकरण हो गया एवं व्यक्ति स्वातन्त्र्य और सामाजिक नियम में उपयुक्त संन्तुलन स्थापित हुआ जिससे जनतन्त्रीय अनुशासन और अनुशासित आर्थिक जनतन्त्र की उत्पत्ति हुई।

इस सामाजिक ढाँचे के मूलभूत सिद्धान्त निस्सन्देह अन्तर्राष्ट्रीय हैं। समस्त देशों में उन्हें समानरूपेण लागू किया जा सकता है।

आकर्षण-नियम या सापेक्षवाद के सिद्धान्तों पर जिस प्रकार न्यूटन या आइन्सटीन का एकाधिकार नहीं हो सकता उसी प्रकार हिन्दू भी इन नियमों पर अपने एकाधिकार का दावा नहीं कर सकते। हिन्दू इन सार्वभौम नियमों के द्रष्टा हैं, न कि प्रवर्त्तक या निर्देशक। संसार के समस्त मानव के लिये वे नियम प्रगट हुए है।

सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समुदाय अपने प्रयोजन के अनुकूल ध्वज को मान्यया प्रदान करते हैं। अन्य अनेक वस्तुओं में ध्वज ही एक वैशिष्ट्यद्योतक चिह्न होता है। कतिपय अंशों में ध्वज ही द्वारा अन्य मानवों से कोई एक समुदाय भिन्नरूप से परिलक्षित होता है। प्रतिनिधि के रूप में ध्वज किसी एक विशेष समुदाय के समस्त घटकों को प्रकट करता है एवं उस समुदाय के घटकों से भिन्न तत्वों से उस विशिष्ट समुदाय का पृथकत्व द्योतित होता है। बौद्धिक रूप से ध्वज द्वारा उन सभी विचारों एवं आदर्शों की अभिव्यक्ति होती है जिन्हें ध्वजग्राही समुदाय अङ्गीकार करता है एवं साथ ही इसके द्वारा अब उतने ही प्रभावी रूप से अन्य विचारों एवं आदर्शों का निषेध भी हो जाता है। किसी एक मत का प्रतीक होने पर यह अन्य मतों से स्वयं ही भिन्न हो जाता है।

अस्तु, प्रचलित समस्त पताकाएँ सामुदायिक ही हैं न कि अन्तर्राष्ट्रीय। यद्यपि सभी को अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं कहा जा सकता, तथापि ऐसी पताकाओं को सामुदायिक ही कहा जायेगा जो अन्तर्राष्ट्रीयता के असाम्प्रदायिक मत का पूरक सिद्ध होने वाले किसी आदर्श का प्रतीक न हो। अभाग्यवश जीवन के समस्त क्षेत्र में पंथानुगामिता बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय धर्म के रूप में नाजीवाद, फासिस्टवाद या सैनिकवाद उदय हो रहा है। यह आशा की जाती थी कि इन राष्ट्रीय मतों के घेरे के बाहर इस प्रकार के अलगाव की भावना का अभाव होगा। क्योंकि शैववाद, वैष्णववाद जैनमत या बौद्धमत आदि गैर सैमिटिक धर्मों ने इस अपवाद का समर्थन

किया था। किन्तु, ईसाइयत, इस्लाम और कम्युनिज्म इन तीन सेमिटिक धर्मों के दुराग्रह और असहिष्णुता ने यह प्रकट कर दिया है कि अनियन्त्रित पन्थवाद कितना अन्धेर कर सकता हैं।

भगवाध्वज सत्तात्मक धर्म का प्रतीक है। अग्नि के प्रति ताप एवं प्रकाश की जो स्थिति है वही स्थिति विश्व के लिये धर्म की है। धर्म कोई वाद या मत नहीं होता अपितु प्रत्येक वाद एवं मत का समावेश धर्म में होता है। अपनी सीमा में रहते हुए प्रत्येक वाद कोई न कोई हितकर प्रयोजन सिद्ध करता है। किन्तु सीमातिक्रमण करने पर उस वाद का ह्रास एवं विनाश निश्चित हो जाता है। किसी वाद में पाई जाने वाली पान्थिक संकुचितता का धर्म भावना से कोई सम्बन्ध नहीं है। समस्त संसार के लिये किया गया कोई भी पान्थिक दावा स्पष्टतया उपहासास्पद होता है। क्योंकि एक ही समय में विभिन्न समाज को भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक कि एक ही समाज को विभिन्न समयों में विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अभी तक किसी भी ऐसी औषधि का आविष्कार नहीं हुआ है जो विभिन्न प्रकार के समस्त रोगों को दूर कर सके। कोई भी वाद सर्वथा निष्प्रयोजन नहीं है। किन्तु किसी भी वाद को हर समय एवं हर स्थान पर लागू नहीं किया जा सकता। कोई भी वाद जब तक मानव हित को अग्रेसर करने वाला रहता है उसे धर्म का ही प्रकट रूप कहा जायेगा। किन्तु, उपयोगिता समाप्त होने के पश्चात् उसका बना रहना धर्म के हित का विरोधी होता है। टेनिसन की प्रसिद्ध पंक्तियों में किञ्चित परिवर्त्तन करके धर्म और विभिन्न वादों का अन्तर बतलाया जा सकता है। यथा—

Old isms changes yielding place to the
And Dharm fulfils itselt in many ways
Lest One goodism should corrupt the world."

पुनश्च किसी भी समय में एक मात्र धर्म ही इस बात की गारण्टी दे सकता है कि व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, राष्ट्रीय, मानसिक एवं आध्यात्मिकादि स्तरों के विविध मतों की उपयुक्त सुरक्षा होगी। समाज के प्रत्येक अवयकों के लिये धर्म में मत सम्बन्धी स्वन्त्रता होती है। सभी व्यक्तियो के धर्मप्रवण होने पर किसी भी व्यक्ति की पान्थिक स्वाधीनता से दूसरे की स्वाधीनता का संघर्ष नहीं होने पाता। धर्म के प्रभाव से कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समुदाय अपने से भिन्न सम्प्रदाय के नियमों के प्रति न केवल सहिष्णु होता है अपितु उन नियमों के गुण की परख भी करता है। यह निष्चित है कि सभी पन्थ एक ही धर्म के विविध रूप हैं। उनके परस्पर भिन्न प्रतीत होने का कारण यह है कि वे विभिन्न देशकाल और पात्रों के लिये प्रगट हुए हैं। धर्म में सभी वादों अर्थात् मतों का अन्तर्भाव हो जाता है। संकुचित प्रवृति वाले सेमेटिक मतों का भी इसमें समावेश होता है किन्तु और सेमेटिक पन्थों के तुल्य पद की प्राप्ति हेतु सेमेटिक मतों को अपनी पान्थिकता का त्याग करना पड़ेगा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि एकमात्र धर्म ही अन्तर्राष्ट्रीय तत्व है। किसी भी पन्थ को वह अनुपम पद नहीं प्राप्त हो सकता, यद्यपि प्रत्येक पन्थ में किसी न किसी अंश में निश्चय ही विशेषता होती है। किसी भी मत का तब तक आदर करना चाहिये जब तक वह धर्म का आदर करता रहे। इस प्रकार किसी भी मत एवं धर्म में विरोध की कोई गुज्जाइश नहीं है। धर्मरूपता के ही कारण प्रत्येक मत आदरणीय हो जाता है। प्रत्येक आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक मतों के ध्वज का आदर तभी करना चाहिये जब वे सार्वभौम धर्म के ध्वज का आदर करते हों। वेदों से लेकर कम्युनिज्म तक के समस्त अनुयायी निस्सन्देह अपने ध्वज का शुद्धभाव से आदर करने के कारण प्रशंसनीय हैं। किन्तु यदि वे उसी के साथ विश्वधर्म के ध्वज की बंदना नहीं करते तो वे अपने मत के ही विरुद्ध कार्य करने के दोषी होते हैं।

राज्यध्वज के पास मार्चपास्ट करते समय सेना की विविध टुकड़ियां गर्वपूर्वक विभिन्न रङ्गों की अपनी पताकाएँ फहराती हैं। सार्वभौमिकता के इस ध्वजा का आदर करके समस्त वादों के अनुयायी अपनी पताकाओं की प्रतिष्ठा ही बढायेंगे।

"ध्वजा करि उडाइबो बैरागीर उत्तरीवसन।
दरिद्रेर बल।
एक धर्मराज्य होबे ए भारते ए महाबचन।
कोरिबो संबल॥"

—रवीन्द्र नाथ ठाकुर

---

# मई दिवस और श्रमिक एकता

हमारे कुछ साथियों ने भारतीय श्रमिकों द्वारा विश्वकर्मा जयन्ती को 'राष्ट्रीय श्रमिक दिवस' के रूप में मनाये जाते देख यह आशङ्का प्रकट की है कि इससे संसार व्यापी श्रमिक आन्दोलन की विकासोन्मुख एकता की हानि होगी। इन मित्रों ने यह मान रक्खा है कि मई दिवस श्रमिक ऐक्य का प्रतीक है। क्या यह मान्यता लक्ष्यों पर आधारित है।

सर्वप्रथम यह जान लेना अत्यन्त मनोरंजक होगा कि पिछले दिनों में मई दिवस औद्योगिक बम्बई नगर में किस प्रकार मनाया गया। वामपन्थी यूनियनें उस दिन पर्याप्त सक्रिय रहीं। किन्तु इण्टुक से सम्बन्धित यूनियनों ने इस उत्सव के प्रति उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया। केवल दो ही इन्टुक यूनियनों ने इस उत्सव में भाग लिया। 'हिन्दुस्तान समाचार' के प्रतिनिधि से इन्टुक के एक प्रवक्ता ने बतलाया कि उनका संगठन मई दिवस को राष्ट्रीय श्रमिक-दिवस के रूप में नहीं मानता, यद्यपि इण्टुक की केन्द्रीय कार्यकारिणी ने अपनी यूनियनों को अभी तक इस उत्सव में भाग न लेने का निर्देश नहीं दिया है। इण्टुक अभी तक यह विचार करता रहा है कि क्या गाँधी जयन्ती-तिथि को राष्ट्रीय श्रम दिवस माना जाय ?

वामपन्थी यूनियनों ने भी उक्त दिवस का उत्सव मनाने की योजना पूरी करने में एकता या ऐकमत्य का कोई परिचय नहीं दिया।

A. I. T. U. C. और H.M.S. ने विभिन्न पार्कों में अपनी सभाओं का आयोजन किया। इस प्रकार मई दिवस पर नगर के श्रमिक क्षेत्र की अनेकता, विभेद एवं द्वेष को प्रगट होने प्राप्त का अवसर हुआ।

यह सर्वथा स्वाभाविक भी था क्योंकि भिन्न-भिन्न संगठनों के लिए उक्त दिन का अर्थ भी भिन्न-भिन्न ही था। इस दिन H. M. S. ने जनतन्त्रीय समाजवाद की प्राप्ति के अपने निश्चय को दुहराया एवं A. I. T. U. C. के लिये इस दिन प्रोलेटेरियेट की तानाशाही के चरम आदर्श में अपनी आस्था को दृढ़ किया। इस प्रकार दो प्रतिद्वन्द्वी संगठनों ने एक ही दिन एक ही नगर में अपना आयोजन पूरा किया।

वास्तव में इसे एक स्थानीय घटना नहीं मानना चाहिये। यह तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विद्यमान अनेकता का स्थानीय प्रतिविम्ब मात्र है।

वस्तुतः श्रमिक जगत कभी भी एक नहीं रहा। आन्तरिक मत भेदों के कारण प्रथम इण्टरनेशनल को असफल होते देख स्वयं मार्क्स असहाय सा बैठा रहा। प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारम्भिक दिनों में ही जागरूक राष्ट्रीयता के दबाववश द्वितीय इण्टरनेशनल भी नष्ट भ्रष्ट हो गया। इसके पश्चात् लेनिन ने तृतीय इंटरनेशनल का संगठन किया। किन्तु, मौखिक रूप से भी संसार भर के श्रमिक वर्ग के प्रतिनिधित्व का दावा करने के पूर्व ही उसके प्रतिद्वंद्वी रूप से द्वितीय इंटरनेशनल पुनर्जीवित हो उठा। दो विश्वयुद्धों के मध्यकाल में ही श्रमिक क्षेत्र में त्रिकोणीय संघर्ष मूर्त्तिमन्त हो उठा। इस क्षेत्र में द्वितीय इण्टरनेशनल के पुनर्संठन स्वरूप Internationl Federation of Trade Unions' तृतीय इण्टरनेशनल से प्रेरित Red International of Labour Unions और सिण्डिकेलिस्ट वर्ग द्वारा संगठित International Fedration of the Working Peoples Association का प्रादुर्भाव हुआ। प्रथम का केन्द्रीय सचिवालय एम्सटर्डम में था, द्वितीय का मास्को में एवं तृतीय का मैड्रिड में। इनके अतिरिक्त

International Federation of Christian Trade Unions और Pan American Federation of Labour जैसी अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी थे।

इस प्रकार श्रमिक एकता का आदर्श एक दूर का स्वप्न सिद्ध हुआ। संसार के श्रमिकों में वर्तमान आदर्शों एवं प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप ही इन विविध अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठनों का निर्माण हुआ। आगे चल कर इससे यह भी प्रकट हुआ कि यदि संगठित किये जाने वाले श्रमिकों के लक्ष्य में एकता की स्थापना नहीं की जायेगी तो कल्पित श्रमिक एकता का साक्षात्कार कभी भी सम्भव न होगा। क्या संसार के विभिन्न देशों के मजदूर संसार की समस्त समस्याओं के प्रति समान दृष्टिकोण अपनायेंगे अथवा क्या यह संभव है कि श्रमिक स्वभावतः जिस समाज का अंग है, उसके प्रति अपनी सहज झुकाव, आसक्ति और भक्ति से अपने हृदय को मुक्त कर लेगा ? क्या किसी ऐसे श्रमिक की कल्पना की जा सकती है जो केवल 'आर्थिक मानव' हो और संसार के श्रमिक कोर्स का अवयव मात्र हो तथा श्रमिक-जगत के अतिरिक्त उसकी कोई भी व्यक्तिगत भावना या चाह न हो ? क्या सुसंस्कृत एवं श्रेष्ठ भावना रूपी देवों को निष्कासित कर मानव के मनःप्रदेश पर पूर्ण रूप से सर्व समर्थ डालर का राज्य स्थापित किया जा सकता है ? यदि दुर्जनतोष न्याय से हम यह संभव मान भी लें तो भी क्या समस्त मनुष्य जाति एवं विशेषकर मजदूरों के लिये यह एक भयावह स्थिति नहीं होगी ? इस प्रकार की भौतिकवादी धारणा से अवश्यमेव लोभ, द्वेष, घृणा संघर्ष एवं सामाजिक विशृङ्खलन की उत्पत्ति होगी। इसका सामूहिक परिणाम श्रमिक एकता के विकास एवं निर्वाह को आघात पहुंचाने वाला सिद्ध होगा। क्या यह मनोवृत्ति अपने ही उद्देश्यों की नष्ट करने वाली न होगी ? क्या यथार्थता की प्राप्ति हेतु किसी भी समय इस प्रकार के मानसिक उथल-पुथल को जनप्रिय होने देना किसी प्रकार व्यवहार्य होगा ? इसके अभाव में

समाज के विभिन्न अवयवों से संबद्ध श्रमिक क्या एक सामान्य मनुष्य मात्र नहीं होगा जिसमें श्रमिक-वर्गीय प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा विस्तृत दायरे वाली मानवीय प्रतिक्रियाएँ निर्विवाद रूप से पाई जायँ ? अन्त-राष्ट्रीय श्रमिक एकता के लिये उद्देश्य की पूर्ण एकता सर्वप्रथम आवश्यक प्रतीत होती है। इसके पूर्व भी संसार भर के श्रमिकों का सम्बन्ध समाज के जिन विभिन्न अवयवों से होता है उनके धार्मिक विश्वासों, राजनीतिक झुकावों, राष्ट्रभक्ति, जातीय एकता, सांस्कृतिक भूमिका एवं सामाजिक वातावरण में उद्देश्य की एकता का स्थापन करना आवश्यक होगा। वस्तुतः इसका अर्थ होगा केरल के सन्त श्रीनारायण गुरु स्वामी द्वारा छः शब्दों में प्रतिपादित 'उरु जाति, उरु मतम् उरु देवम्' अर्थात् 'एक जन, एक मत और एक देव' का महान् आदर्श। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये अनेक सन्तों, दार्शनिकों, सेना-पतियों एवं सम्राटों ने भूतकाल में प्रयास किया। किन्तु, उनमें एक भी सफल न हुआ। यह सोचना मृग मरीचिका होगी कि मई दिवस उस बात में सफल होगा जिसमें और सभी लोग असफल हो चुके हैं।

युद्धपूर्व के काल में श्रमिक आन्दोलन पर 'शक्ति-राजनीति' का स्पष्ट प्रभाव पड़ रहा था। ऐंग्लो-सेक्शनों और रूस के विचित्र गठबंधन के कारण यह प्रतीत होने लगा था कि कुछ समय के लिये राजनीतिक क्षेत्र में फासिस्ट-विरोध के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति हो चुकी है और इसके परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक एकता सर्वथा संभव हो गई है। इसके फलस्वरूप युद्ध समाप्ति के तुरन्त बाद उभय शक्ति गुटों के ट्रेडयूनियनों को लेकर 'The World Fede-ration of Trade Unions' नामक संस्था संगठित की गई। किन्तु, आवश्यकतावश स्थापित राजनीतिक एकता कृत्रिम और अस्थायी सिद्ध हुई। शीघ्र ही इसके टूटने का क्रम प्रारम्भ हुआ जिसके कारण W. F. T. U. में दरार पड़ गई। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐंग्लो सैक्सन गुट से प्रभावित International Confedera-

tion of Frce Trade Unoins का निर्माण हुआ। ये प्रतिद्वन्दी संगठन सदा एक-दूसरे का विरोध करते एवं अपने शक्तिगुट के साधन रूप से व्यवहृत होते हैं। सर्वग्रासी राज्यों को छोड़ कर प्रायः हर सभ्य देश में यह संघर्ष चल रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक एकता की बात उस समय और भी हास्यास्पद प्रतीत होती है जब यह दिखलाई पड़ता है कि भारत ऐसे मध्यस्थ देश में भी एक ही फैक्टरी के मजदूर संसार के विभिन्न श्रमिक-संगठनों से सम्बन्धित दो या अधिक परस्पर विरोधी ट्रेड यूनियनों के रूप में बँट गये हैं। I.N.T.U.C. और H M.S. का सम्बन्ध I. C. F. T. U. से है और A. I. T. U. C. का सम्बन्ध W. F. T. U. से है। मई दिवस पर इन अन्तर्राष्ट्रीय कैम्पों को एक-दूसरे के विरोध में अपनी शक्ति को केन्द्रित करने और प्रभाव बढ़ाने का अवसर प्राप्त होता है। यदि इस सर्वसम्मत दिन पर शीत-युद्ध को गम्भीर करने और शक्ति परीक्षण करने को एकता की अभिव्यक्ति मानी जाय तभी मई दिवस को श्रमिक-एकता का आदर्श-प्रतीक कहा जासकता है।

इस देश में हम ट्रेड-यूनियन आन्दोलन पर राजनीतिक दलबन्दी का स्पष्ट प्रभाव सरलता से देख सकते हैं। किन्तु कार्य के इस आर्थिक क्षेत्र में मत religion की गतिविधि से हम अभी अपरिचित ही हैं।

भारत के ट्रेड-यूनियनिस्ट सामान्यतया इस तथ्य से अपरिचित ही हैं कि दो अन्तर्राष्ट्रीय चर्चों द्वारा 'मई-दिवस' पर एकाधिकार करने का प्रयास हो रहा है। प्रत्येक के लिये इस अवसर का अपना एक अलग महत्व है। रूस के कम्युनिस्ट चर्च द्वारा इस दिन का जो अर्थ किया जाता है वह प्रायः विदित है किन्तु, रोमन कैथलिक चर्च द्वारा इसकी जो व्याख्या की जाती है उस पर हमारे देश की जनता ने अभी उचित ध्यान नहीं दिया है। वस्तुतः सेक्युलर भारत का सामान्य नागरिक यह जानकर स्तब्ध हो जायेगा कि Holy See के पथ-प्रदर्शन और

संरक्षण में ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रिश्चियन ट्रेड यूनियन का व्यवस्थित संगठन किया जा रहा है।

अर्वाचीन औद्योगिक सभ्यता और उसके परिणाम-स्वरूप विकसित हो रहे ट्रेड-यूनियन-आन्दोलन के प्रति रोमन-कैथोलिक-चर्च बराबर सजग रहा है। १९५१ में होलीफादर, पायस द्वादश ने अपने रेडियो ब्राडकास्ट में स्पेन के कैथलिकों से कहा कि "कोई भी चर्च पर यह आरोप नहीं लगा सकता कि इसके द्वारा श्रमिकों और सामाजिक प्रश्नों की अवहेलना हुई है या उनको उचित महत्त्व नहीं दिया गया।"

आज से ६० साल पूर्व जब हमारे पूर्वाधिकारी लियो त्रयोदश ने श्रमिकों को उनके अधिकार का मैग्नाचार्टा प्रदान किया उस समय से अन्य बातों की अपेक्षा इन्हीं दो प्रश्नों पर चर्च ने सविशेष ध्यान दिया है। चर्च अपने उत्तरदायित्व के प्रति सर्वदा सजग रहा है और है।"

सन् १८९१ के विश्व घोषणा में लियो तेरहवें ने पूँजी और श्रमिक के सापेक्ष्य पारस्परिक अधिकारों की घोषणा की है। ४० वर्ष बाद उनके उत्तराधिकारी पोप पायस ग्यारहवें का घोषणापत्र निकला जिसमें अन्य बातों के साथ उन्होंने यह उद्घोषित किया कि श्रमिकों के साक्षात् उद्धारक स्वयं श्रमिक ही होंगे।

इस सामान्य नीति के अनुसार चर्च के पदाधिकारी चर्च की छत्र-छाया में ट्रेड-यूनियन आन्दोलन के संगठन का महत्व आँकने में कभी भी पीछे नहीं रहे।

सन् १९२० में ही International Fedration of Christion Trade Union का निर्माण हो गया। पहले इसका केन्द्र यूट्रेक्ट में रहा। यह ईसाई-सिद्धान्तों पर चलने वाले संसार के समस्त ट्रेड-यूनियनों को सम्बन्धित करता है। आज लैटिन अमेरिका में इस फेडरेशन से सम्बन्धित कई ट्रेड-यूनियनें हैं। फेडरेशन का वर्त्तमान कार्यालय ब्रूसेल्स में है और यूरोप में इटली, पुर्त्तगाल, हालैण्ड, फ्रांस

और बेल्जियम की अनेक ट्रेड यूनियनें इस फेडरेशन से सम्बन्धित हैं। फ्रेंचभाषी अफ्रीकी क्षेत्र में यह श्रमिक-आन्दोलन को संगठित और प्रभावी बनाने का प्रयास कर रहा है। एशिया में एकमात्र वियतनाम ही ऐसा देश है जहाँ I. F. C. T. U. की यूनियनें हैं एवं फ़ेडरेशन के अधिकारी वियतनाम में ही अपना एशियाई हेडक्वार्टर बनाना चाहते हैं।

भारत में I. F. C. T. U. से नियमित रूप से सम्बन्धित कोई ट्रेड यूनियन नहीं है। किन्तु, इस देश में द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व कतिपय कैथोलिक श्रमिकों के एसोसियेशनों का निर्माण हुआ है। वे वैधानिक रूप से कल्याणकारी कार्यों में रुचि लेते हैं।

I F. C. T. U, के अतिरिक्त सन् १९५२ में जोसेफ कार्डिन ने बेल्जियम में 'Young Christian Workers Movement' का सूत्रपात किया। ३७ देशों के भीतर यह राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रहा है और २५ देशों में यह निर्माण के विभिन्न स्तरों में पहुँच चुका है। इसका अन्तर्राष्ट्रीय मन्त्रालय ब्रूसेल्स में है। सन् १९५३ में भारत के कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और आसनसोल में इसकी शाखायें स्थापित हुई हैं।

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से श्रमिक आन्दोलन में प्रवेश कर लेने पर चर्च को स्वाभाविक रूप से मई दिवस के प्रति अपनी धारणा निश्चित करनी पड़ी। १ मई १९५५ को इटली के कैथोलिक श्रमिक संघ के समक्ष पोप पायस बारहवें ने इस दिवस को श्रमिक सन्त जोसेफ का त्यौहार निश्चित कर १ मई के दिवस का ईसाईकरण किया।

उन्होंने घोषित किया कि 'यह १ मई का दिवस ईसाई श्रमिकों ने अङ्गीकृत कर लिया है और चूँकि इसका बपतिस्मा भी हो गया है अतः भविष्य में इस दिवस को द्वेष, घृणा एवं हिंसा का उत्तेजक नहीं माना जायेगा। .....यह एक ईसाई पर्व है। अतः इसका अर्थ यह है कि श्रमिकों के विशाल परिवार में ईसाई आदर्शों के बढ़ते हुए दृढ़ चरण के निमित्त इस अवसर को आनन्द का दिन माना जायेगा।"

इसके अर्थ आपके मस्तिक में स्पष्ट करने की दृष्टि से हम इस दिन को श्रमिक सन्त जोसेफ का पर्व घोषित करते हैं।

उपर्युक्त घोषणा के अर्थ की व्याख्या करते हुए २० अप्रैल १९६० को मद्रास के आर्कविशप Rev. L. Mathias ने कहा कि "कई वर्षों से प्रथम मई को श्रमिकों का दिन माना जा रहा है और विशेषकर सोशलिस्ट लोग इस दिवस को श्रमिक-दिन के रूप में मनाते रहे हैं।

१ मई को श्रमिक सन्त जोसेफ़ के फीस्ट की घोषणा करके पोप पायस द्वादश ने श्रमिक दिन का ईसाईकरण कर दिया है। इस प्रकार उन्होंने श्रमिकों के चर्च के प्रेम को प्रकट किया है और सन्त जोसेफ़ को ईसाई श्रमिक का एक जीवन्त आदर्श निर्धारित किया है।

सन्त जोसेफ़ को आदर्श के रूप से प्रस्तुत करते हुए पोप पायस बारहवें ने कहा ईसा के अति साझेदार रहने वाले, उनके घर-बाहर के कामों में भाग लेने वाले सन्त जोसेफ के अतिरिक्त कोई भी पूर्णरूप से श्रमिक भावना में रँगा हुआ नहीं रहा।"

सन्त जोसेफ और श्रमिक वर्ग में एक विशेष नाता कायम करने का कार्य वर्त्तमान काल के ट्रेड यूनियन आन्दोलन से साम्य स्थापित करने की दृष्टि से हुआ है। लियो १३वें ने सन् १८८९ में सन्त जोसेफ को एक आदर्श प्रोलेटेरियट माना। वेनेडिक्ट् १५वें ने श्रमिकों को यह परामर्श दिया कि वे सन्त जोसेफ को अपना आदर्श मान लें। पायस ग्यारहवें ने निरीश्वरवादी कम्युनिज्म के विरुद्ध प्रवर्त्तित संघर्ष में नाजरेथ के श्रमिकों की गतिविधि की निम्न प्रकार से व्याख्या की है—

सभी लोगों द्वारा आकाँक्षित 'क्राइस्ट के राज्य की शान्ति Peace of Christ in the Kingdow of christ के आगमन को शीघ्र संभव बनाने की दृष्टि से शान्ति के प्रबल रक्षक सन्त जोसेफ के आदर्श को सम्मुख रख हम संसारव्यापी कम्युनिज्म के विरुद्ध चर्च का विस्तृत अभिमान प्रारम्भ करते हैं।"

इस प्रकार संसारव्यापी कम्युनिज्म के विरुद्ध चर्च अभियान में सन्त जोसेफ को एक अस्त्र बनाया गया है। प्रथम मई के दिन को जोसेफ का फीस्ट डे बनाकर पायस बारहवें ने श्रमिक क्षेत्र में ईसाई श्रमिकों की शक्ति को स्वाधिकृत करने की योजना की है। इस पर अभी तक वामपंथियों एवं विशेषकर कम्युनिस्टों का एकाधिकार रहा है।

यहाँ यह उल्लेख कर देना मनोरञ्जक होने के साथ ही शिक्षाप्रद भी होगा कि प्रत्येक चर्च अपने सिद्धान्तों और मान्यताओं के निर्माण में स्वतन्त्र होते हुए भी अपने विरोधी को दुर्बल बनाने और उसके विरुद्ध अपनी स्थिति को दृढ़ करने की दृष्टि से मई दिवस का उपयोग कर रहा है। दोनों ही वर्ग एक ही दिन एक-दूसरे को समाप्त करने की दृष्टि से अपनी श्रमिक-शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। उनदोनों के आदर्श और उद्देश्य एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। इस दिन ईसाई ट्रेड यूनियनें कम्यूनिस्ट ट्रेड यूनियनों को नष्ट करने के धार्मिक कार्य का निश्चय करती हैं एवं कम्युनिस्ट ट्रेड यूनियनें प्रथम को समाप्त करने का संकल्प करती हैं। भारत में जो लोग मई दिवस को अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक एकता का प्रतीक मानते हैं वे इस आधारभूत तथ्य से अपरिचित प्रतीत होते हैं।

एक ही युद्धभूमि में परस्पर विरुद्ध सेनाओं की व्यूहरचना के सदृश एक ही दिन परस्पर विरोधी श्रमिक संगठनों के होने वाले जमाव से एकता या मेल का प्रगटीकरण नहीं होता। उद्देश्य की एकता के बगैर जनएकता की बात अकल्पनीय है। वस्तुतः मई दिवस संसार व्यापी श्रमिक फूट का ही प्रतीक है।

# विश्वकर्मा जयन्ती

## आदर्श भारतीय राष्ट्रीय श्रमदिवस

भारत में श्रम की प्रतिष्ठा सर्वदा मान्य रही है। यद्यपि 'लेबर' के रूप में किसी जाति या वर्ग का अस्तित्व नहीं था। किन्तु, प्रत्येक नर-नारी से यह आशा की जाती थी कि वह अपना निर्धारित कार्य आजीवन पूर्ण श्रद्धा भक्ति के साथ करता रहेगा। हमारा आदर्श था 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'। अस्तु, प्रत्येक व्यक्ति एक श्रमिक था और श्रम की प्रतिष्ठा के प्रतीकस्वरूप एक श्रम-दिवस भी मनाया जाता था। इस दिवस को विश्वकर्मा-दिवस कहा जाता था।

## जमशेदपुर में यह दिन मनाया जाता है

सहस्रों वर्ष से हम यह दिन मनाते आ रहे हैं। इस आधुनिककाल में भी लाखों श्रमिक इस दिन छुट्टी मनाते हैं एवं उत्पादन के देव की अर्चना करते हैं तथा इस दिन को एक पर्व मानते हैं। भारत में ऐसा कोई प्रदेश नहीं है जहाँ के मजदूर इस दिन को छुट्टी का दिन न मानते हों। वस्तुतः राष्ट्रीय कैलेण्डर में प्रादेशिक भेद के अनुसार विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न दिन इस पर्व का मनाना अनिवार्य है। अस्तु यह एक राष्ट्रीयपर्व है। इस दृष्टि से जमशेदपुर टाटा के कारखानों में विश्वकर्मा जयन्ती के अवसर पर श्रमिकों को एक दिन की सवैतनिक छुट्टी दी जाती है। कई स्थानों पर विश्वकर्मा सोसाइटियाँ भी हैं। वर्त्तमान समय में भी एकमात्र यही दिन भारत का वास्तविक श्रम-दिवस है।

किन्तु, भारतीय श्रमिकों द्वारा सतत इस पर्व के मनाये जाने पर भी यह एक आश्चर्य की बात है कि पश्चिमी ढंग के ट्रेड-यूनियनों के नेता अब तक भी इसके महत्त्व को नहीं समझ पाये हैं। वे इस परम्रा-गत पर्व की ओर से मुँह मोड़ने और मई दिवस मनाने में गर्व का अनुभव करते है। मानों प्राचीनकाल में यहाँ श्रमिक थे ही नहीं और यहाँ के लोग विगत ७२ सालों से ही श्रम करना सीख पाये हैं। अथवा यह कि हमारा राष्ट्र अभी कल ही उत्पन्न हुआ है, जिसके पास अपना पर्व एवं राष्ट्रीय परम्परा नहीं है और उसे इन सबको पश्चिम से उधार लेना है।

## मई दिवस का अर्थ है वर्गसंघर्ष

मई-दिवस वर्गसंघर्ष और राष्ट्रीय विशृङ्खलन का प्रतीक है। औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व के पश्चिमी समाज की यह विशेषता रही कि वहाँ के समाज के एक वर्ग में स्वयं को स्वामी एवं अन्यों को अपना दास समझने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई, जिसके कारण दूसरों के श्रम का शोषण होने लगा। इसके परिणामस्वरूप शोषितों में शोषकों के प्रति घृणा एवं बदले की भावना उत्पन्न हुई, जिससे उभय वर्गों का संघर्ष प्रारम्भ हुआ और राष्ट्रीय ऐक्य का विनाश हो गया।

संसार की समस्त सम्पत्ति ईश्वर की है। प्रत्येक नर-नारी को इसको बढ़ाने के लिये कार्य करना चाहिये एवं पुरस्कारस्वरूप स्वयं के लिये निर्धारित अंश ग्रहण करना चाहिये। भारतीय समाज व्यवस्था एवं मनोरचना में समाज को अंगी एवं प्रत्येक नर-नारी को समाज-पुरुष का अंग माना गया है। इस ढाँचे में सभी को कर्म करने का अधिकार हैं। यहाँ व्यक्तिगत लाभ की भावना का अभाव है। व्यक्ति का समाज में विलय हो गया है। अतएव यहाँ व्यक्तिवादी पाश्चात्य समाज की बुराइयों का सर्वथा अभाव है। यहाँ शोषण, शोषक, शोषित, वर्ग और संघर्ष की धारणा ही नहीं है। यहाँ केवल एक वर्ग है और वह है भारतमाता के पुत्रों का वर्ग।

# पीपुल्स सेक्टर : भारत की विशेषता

हमारा ग्रामीण नाई, धोबी और लुहार किसका नौकर है ? कोई एक व्यक्ति उसका स्वामी नहीं हो सकता। वह किसी खास मनुष्य का नौकर नहीं होता। वह समाज का एक अंग है। अतः वह एक स्वयं-सेवक है। आज की श्रम-सम्बन्धी शब्दावली में वह स्वयं अपना मालिक और अपना दास है। 'प्राइवेट सेक्टर' और 'पब्लिक सेक्टर' के दोषपूर्ण घेरे में जिनके विचार चक्कर लगाया करते हैं, ऐसे पश्चिमी ढंग के नेता, जिन्होंने दोनों ही सेक्टरों में श्रम को एक खेल की वस्तु बना दिया है, कभी भी ऐसे तृतीय सेक्टर की बात नहीं सोच सकते, जहाँ नियोजक-नियुक्त employer-employee भाव का सर्वथा अभाव हो। उपयुक्त शब्द के अभाव में हमने इसे 'पीपुल्स-सेक्टर' कहा है। भारतीय समाज-व्यवस्था की यह मुख्य विशेषता है। विश्वकर्मा-दिवस इस वैशिष्ट्य का प्रतीक है।

यह एक आश्चर्य एवं खेद की बात होगी कि वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करने वाले भारतीय वर्गसंघर्ष के प्रतीक-स्वरूप मई-दिवस को मनाएँ। यह विकास-चक्र को पीछे की ओर घुमाना कहा जायेगा। राष्ट्रीय सम्मान और ऐक्य के लिये यह एक चुनौती है।

हमारे राष्ट्र का आत्मसम्मान इसे नहीं सहन कर सकता। इस लिये भारत के एकमात्र श्रमिक संगठन ने प्रत्येक भारतीय से राष्ट्रीय श्रम-दिवस मनाने की पुकार की है।

विश्वकर्मा, जिन्हें त्वष्टा भी कहा जाता है, स्वायंभुव मन्वन्तर में देवताओं तथा प्रजापति के शिल्पी थे। अपने हाथ और बुद्धि कौशल द्वारा विविध पदार्थों की सृष्टि करना उनका अधिकार और कर्त्तव्य था। वे शिल्प-विज्ञान के आचार्य थे। सुंद और उपसुंदके विनाशार्थ उन्होंने ही तिलोत्तमा को उत्पन्न किया था। त्रिपुरासुर के विनाशार्थ उन्होंने भगवान शिव के रथ का निर्माण किया। देवों के लिये वायुयान का निर्माण

करना उन्हीं का ही कार्य था। उन्होंने इन्द्र के लिये लङ्का का, श्रीकृष्ण के लिये द्वारिका और वृन्दावन का तथा धर्मराज युधिष्ठर के लिये हस्तिनापुर का निर्माण किया। उन्होंने ही इंजीनियरिंग की सर्वप्रथम आधिकारिक पुस्तक लिखी। देवताओं के शस्त्रागार का निर्माण किया। दधीचि ऋषि की हड्डियों से उन्होंने ही घातक वज्र बनाया। उनकी कन्या संजूया विवस्वान की पत्नी थी। उनका तेज उसके लिये असह्य होने के कारण विश्वकर्मा ने कुम्हार के चक्र का प्रयोग कर उनके तेज को कम किया और उस तेज से भगवान विष्णु, शिव और इन्द्र के लिये क्रमशः चक्र, त्रिशूल और वज्र का निर्माण किया। ये ही यज्ञीय वेदिका के निर्माता थे। संसार में वही सर्वप्रथम नापित थे जिन्होंने एक यज्ञ में ब्रह्मा का बाल बनाया। विश्वकर्मा ही समस्त कला, कौशल और उद्योगों के मूल प्रवर्त्तक थे। लोहार, सोनार, कुम्हार, दर्जी, शिल्पी, कृषक एवं नापित इत्यादि सभी परिश्रमी एवं उद्योगशील जातियों के वे मूल पुरुष हैं। समस्त उद्योगों के प्रवर्त्तक होने के कारण ऋग्वेद ने लाक्षणिक रूप से उन्हें समस्त पृथ्वी और स्वर्ग का निर्माता कहा है। यदि हम भारत में हुए औद्योगिक विकास में विश्वकर्मा के अद्भुत को ठीक ढंग से समझें और भारत को संसार का आदि सभ्य देश मानें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विश्वकर्मा संसार के समस्त और औद्योगिक विकास और उत्पादक श्रम के आदि प्रवर्त्तक हैं।

विश्वकर्मा की धनीभूत राष्ट्रीयता आज हमारे श्रम का मुख्य आदर्श है। आज हम राष्ट्र के पुनर्निर्माण की बातें करते हैं परन्तु इस लक्ष्य को प्राप्त करने वाले श्रमिक वर्ग में स्वार्थ साधन की भावना भरती जा रही है। वस्तुतः सम्पत्ति त्याग को हीन कोटि का त्याग माना गया है। किन्तु, राष्ट्र हितार्थ इस त्याग के लिये भी हम प्रस्तुत नहीं हैं। ऐसी परिस्थिति से अपनी अनुभूतियों तक का सर्वोच्च बलिदान करने वाले विश्वकर्मा का आदर्श हम सभी के लिये एक पथ-प्रदर्शक नक्षत्र है।

# अपने ज्येष्ठ पुत्र से बढ़कर उन्होंने देश को माना

विश्वकर्मा का विवाह प्रह्लाद की पुत्री रचना से हुआ था। उसे प्रह्लादी, विरोचना, वैरोचनी, यशोधरा आदि भी कहते थे। उनका पुत्र त्रिशिरा विश्वरुप बहुत बड़ा विद्वान था। वह इतना विद्वान था कि एक अपमान के कारण जब इन्द्र को त्यागकर बृहस्पति चले गए तो शत्रुकन्या का पुत्र होते हुए भी त्रिशिरा को देवताओं ने अपना गुरू बनाया। किन्तु उसकी बढ़ रही जनप्रियता एवं उसके उभय पक्षीय अनुराग से उत्पन्न संदेह के कारण इन्द्र ने उसका वध कर दिया।

अपने पुत्र-वध से रुष्ट होकर विश्वकर्मा ने इन्द्र के शत्रु-रूप पुत्र की प्राप्ति हेतु एक कठोर अनुष्ठान प्रारम्भ किया। किन्तु थोड़े ही समय के अनन्तर उन्होंने प्रकृतिस्थ होकर अपने कार्य के परिणाम का विचार किया। उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि व्यक्तिगत घृणा के कारण वे राष्ट्रनायक इन्द्र का वध करते हैं तो इससे राष्ट्र दुर्बल होगा और पूरे राष्ट्र की हानि होगी। देशभक्त विश्वकर्मा को यह अभीष्ट नहीं था। वे अनुष्ठान का संकल्प कर चुके थे। अतः अनुष्ठान-भङ्ग नहीं कर सकते थे। अस्तु अनुष्ठान जारी रखते हुए भी वे 'इन्द्र-शत्रु' पद में 'शत्रु' के बदले 'इन्द्र शब्द पर जोर देने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि शब्द का अर्थ बदल गया। 'इन्द्र का शत्रु' के बदले उसका अर्थ हो गया 'इन्द्र जिसका शत्रु हो।'

उनके अनुष्ठान के फलस्वरूप वृत्र का जन्म हुआ जो एक श्रेष्ठ योद्धा था और जिससे देवता भी डरते थे। कुछ समय तक उसने देवों के शत्रु हिरण्याक्ष के सेनापतित्व का कार्य किया। उसके बढ़ रहे आतङ्क के कारण देवता लोग उसके संहार की कामना करने लगे। किन्तु, उससे लड़ने का साहस किसी में भी नहीं था। यहाँ तक कि स्वयं इन्द्र भी किसी ऐसे युद्ध में विजय की आशा नहीं करते थे। ऐसी घड़ी में किसी ने यह परामर्श दिया कि यदि इन्द्र किसी महर्षि की

हड्डियों से निर्मित वज्र का प्रयोग करें तो वे वृत्र का वध कर विजय प्राप्त कर सकते हैं। राष्ट्र के सन्मुख ऐसी आवश्यकता उपस्थित होने पर महर्षि दधीचि आगे आये और उन्होंने अपनी अस्थियाँ समर्पित कीं। उन अस्थियों से दृढ़ वज्र का निर्माण कौन करे ? यह एक कठिन कार्य था। क्योंकि यदि वज्र में रञ्चमात्र भी दोष रह जाता तो इसका अर्थ होता समर में इन्द्र की पराजय। इससे इन्द्र का ही नाश नहीं होता अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र बर्बाद हो जाता। इस कार्य के लिये किसी कुशल कारीगर की आवश्यकता थी। विश्वकर्मा के अतिरिक्त इस कार्य के उपयुक्त और कौन व्यक्ति हो सकता था। किन्तु, वे वृत्रासुर के पिता थे। क्या राष्ट्र के हितार्थ वे अपने ही पुत्र के नाश में शुद्धभाव से सहयोग करते ? सन्तान-प्रेम और राष्ट्र-प्रेम के बीच एक कठिन चुनाव करना था। किन्तु, देवताओं को यह विश्वास था कि विश्वकर्मा में अन्य बातों की अपेक्षा राष्ट्रभक्ति का भाव अति प्रबल है। देवताओं ने विश्वकर्मा से वज्र बनाने का अनुरोध किया और उन्होंने राष्ट्रहितार्थ यह कार्य करना अङ्गीकृत किया। उन्होंने दधीचि की अस्थियों से एक बड़े वज्र का निर्माण किया। वृत्र के साथ युद्ध करते समय इन्द्र ने उस वज्र का प्रयोग किया जिससे वृत्र का वध हो गया। विश्वकर्मा का यह बलिदान अनुपम है। वर्तमान परिस्थितियों में सामान्यतया सम्पूर्ण भारतीयों के लिये एवं विशेषकर श्रमिकों के लिये यह एक उत्प्रेरक आदर्श है

## विश्वकर्मा की प्रतिमा और उनका दिन

अनेक स्थानों पर विश्वकर्मा की प्रतिमाएँ देखी जा सकती हैं। किसी-किसी प्रतिमा में एक मुख होता है और किसी किसी में पाँच मुख होते हैं। उनके हाथों में उत्पादन सम्बन्धी विविध हथियार और औजार होते हैं। उनका वाहन हंस है।

विश्वकर्मा दिवस के सम्बन्ध में दो मत हैं। देश के कुछ भागों में यह दिवस माघ शुक्ल त्रयोदशी को पड़ता है। दूसरे भागों ने और

खास कर पूर्वीय हिस्सों में यह दिवस भाद्र शुक्ल पञ्चमी को पड़ता है। भारतीय-मजदूर संघ ने किसी अन्तिम निर्णय के अभाव में माघ शुक्ल त्रयोदशी को यह दिवस मनाने का निश्चय किया है।

## एक अपील

इस रष्ट्रीय श्रम दिवस को जनप्रिय बनाना आज हमारा राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। गत-वर्षों में भा० म० सं० से सम्बन्धित यूनियनों ने यह दिवस मनाया। किन्तु समूचे देश में बड़े पैमाने पर इसे मनाने की आवश्यकता है। एक प्रकार से यह एक कठिन कार्य है। क्योंकि हमारे श्रम-क्षेत्र में मई दिवस की प्रथा जड़ जमाती हुई प्रतीत होती है और हमारे श्रमिक नेता भी विश्वकर्मा दिवस का महत्व नहीं जानते किन्तु एक प्रकार से यह बहुत कठिन भी नहीं है। क्योंकि आज भी हमारे यहाँ के छोटे-छोटे कलाकार और कारीगर अपने वर्कशाप और घरों में यह दिवस मनाया करते हैं। इस व्यक्तिगत धार्मिक प्रथा को राष्ट्रीय आधार पर आयोजित करना हमारा काम है। इस काम को हाथ में लेने वाले को यह ज्ञात होगा कि उनके लिये आवश्यक पृष्ठ भूमि पहले से ही मौजूद है।

भारतीय मजदूर संघ इस कार्य के लिये समस्त देशप्रेमियों को आह्वान करता है। विश्वकर्मा के नाम पर कार्य करने वाली समितियों को आगे बढ़ना चाहिए। हमें यह विश्वास है कि किसी भी भारतीय-श्रमिक संगठनों से सम्बन्धित यूनियनें धीरे-धीरे निश्चित रूप से यह दिन स्वीकर कर लेंगी। किन्तु ऐसे कदम के लिये पहले हमें आवश्यक बातावरण का निर्माण करना होगा।

इस दिशा में नेतृत्व करने वालों को भविष्य में एक महान राष्ट्रीय कार्य का सम्पादन करने वाले के रूप में स्मरण किया जायेगा।

## भा० म० संघ का प्रस्तावित प्रतीक

२३ जुलाई १९५५ को भोपाल में हुए अपने अधिवेशन में

भारतीय मजदूर-संघ ने २'×३' का चौकोर भगवद्ध्वज को अपना ध्वज स्वीकार किया एवं गम्भीर विचारोपरान्त बाद में अपना प्रतीक निश्चित करने का निर्णय किया। तदनुसार विभिन्न प्रदेशों से भा० म० सं० के केन्द्रीय कार्यालय में संघ के प्रतीक सम्बन्धी अनेक सुझाव प्राप्त हुए। स्वभावतः प्रारम्भिक अवस्था में किसी औद्योगीकरण के भाव को प्रगट करने वाले औजार को प्रतीक मानने की प्रवृत्ति रही। यह बात समय के अनुकूल भी थी। किन्तु क्रमशः भा० म० सं० के कार्यकर्त्ताओं के मन में और भी मौलिक एवं आधारभूत प्रतीकों की कल्पना जागृत हुई। हथौड़ा और हँसिया, चक्र और हल अपने आप में अच्छे हैं। किन्तु, कार्यकर्त्ताओं के मन में यह प्रश्न उठने लगा कि पृथ्वी-मण्डल पर वर्त्तमान समस्त प्राणियों में मनुष्यों द्वारा ही सभी प्रकार के औजारों, मशीनों और सभ्यता के उपकरणों के विकसित होने का क्या कारण है? शारीरिक दृष्टि से अन्य जीवधारियों से मनुष्य को भिन्न सिद्ध करने वाली कौन सी वस्तु है? विचार विमर्श के पश्चात उन लोगों ने मनुष्य के अँगूठे के अनुपम महत्व पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित की।

मनुष्य के कृषि एवं उद्योग सम्बन्धी विकास का एकमात्र कारण उसके पास अँगूठे का रहना है। सम्मुखीक अँगूठे के अभाव में हथौड़ा, हँसिया चक्र या हल का अस्तित्व में आना ही संभव नहीं था। मनुष्य जाति की समस्त भौतिक एवं वैज्ञानिक उन्नति का सर्वप्रथम भौतिक कारण उसका अँगूठा है अतः अब मानव के अँगूठे को ही भा० म० संघ का प्रतीक मानने का निश्चय किया गया हैं। मिनी जे० रेनाल्ड के 'How man conquered Nature' नामक ग्रन्थ में इस चुनाव के कारणों का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता हैं

"Opposition of the thumb अँगूठे के विरोध" के कारण ही मनुष्य के विकास और प्रकृति विजय का प्रथम चरण संभव

हो सका। यदि मनुष्य की उँगलियाँ अगल-बगल समानान्तर रूप में न होतीं तो वह वस्तुओं को उतनी दृढ़ता से न पकड़ पाता तथा वस्तुओं से जिस प्रकार वह आज अपना कार्य करता है उस प्रकार न कर पाता। ऐसी अवस्था में यह बात सन्देहास्पद है कि मनुष्य अपने वर्त्तमान रूप में जीवित रह पाता अथवा अपने अँगूठे के बिना वह औजारों का प्रयोग नहीं कर सकता। किन्तु अपने उँगलियों के सम्मुख अँगूठा रहने से मनुष्कों के द्वारा अपनी रक्षा करने, मकान बनाने, भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध करने एवं स्वनिर्मित औजारों से मकान बनाने या जमीन खोदने के योग्य हुआ है।

यह बात सत्य है कि मनुष्य ही एकमात्र वह प्राणी नहीं है जिसके पास अँगूठा है। समस्त प्राणियों के पास किसी न किसी प्रकार का अँगूठा होता है। बन्दरों और भालुओं की उँगलियों के सम्मुख अँगूठा होता है। मनुष्य के सदृश वे वस्तुओं को ग्रहण कर सकते हैं। वे वृक्ष की डालियों से फल तोड़ कर अपने नीचे के प्राणियों पर फेंक सकते हैं। प्रशिक्षित बन्दरों को ऐसा कार्य करना सिखाया जा सकता है जो प्रायः मानवीय प्रतीत होते हैं। मनुष्यों की तरह छुरी-काँटे से खाने, कप से पीने और वस्त्र पहनने एवं उतारने आदि के अनेक कार्य कर सकते हैं। वे मनुष्यों की तरह सभी कार्य इसीसे कर पाते हैं क्योंकि उनके हाथों में मनुष्य के हाथों की ही तरह उँगलियों के सम्मुख अँगूठा रहता है। किन्तु उनका अँगूठा अत्यन्त छोटा और अविकसित होता है जिसके कारण उनके पकड़ने की शक्ति मनुष्य की अपेक्षा अत्यन्त तुच्छ होती है। अधिकांश प्राणियों का अँगूठा अनेक एशियाई प्राणी के ग्राह्य समर्थ पैर की उँगली की अपेक्षा अधिक उपयोगी नहीं होता। वे अपने बड़े खुर के अगले भाग को हलके पदार्थों के उठाने में प्रयुक्त कर सकते है। किन्तु, वे उन पदार्थों को वस्तुतः दृढ़ता के साथ नहीं पकड़ सकते क्योंकि बड़ी उँगली और अन्य उँगलियों में साम्मुख्य नहीं होता।

किसी लाठी या पत्थर को पकड़कर एवं उससे अन्य जीवधारी को मारकर ही सम्भवतः प्रकृति-विजय के प्रति मनुष्य का प्रथम चरण बढ़ा होगा। शेर या चीते के सदृश मनुष्य के पास मजबूत दाँत या पंजे नहीं होते और न तो इसके पास खरगोश या हिरन के सदृश अपने शक्तिशाली दुश्मन से बचकर भाग निकलने की गति होती है। आदिम मानव दुर्बल और असहाय था; अपनी रक्षा के लिये उसे हथियार की आवश्यकता थी। अतः मनुष्य और जीवधारियों में सबसे बड़ा अन्तर यही था कि मनुष्य एक हथियार बनाने वाला प्राणी था। किसी उपयोगी शस्त्र का अधिकार मनुष्य के विकास का प्रथम चरण था। उसका बाद का विकास प्रारंभ काल से लेकर आज तक उसके शस्त्र-विकास से ही लक्षित होता है। वस्तुतः अपने औजारों एवं हथियारों के हेतु प्रयुक्त सामग्रियों के अनुसार ही विज्ञान मानव-इतिहास को विभिन्न युगों में विभक्त करता है।

## भारतीय-मजदूर-संघ क्यों ?

जुलाई १९५५ में हमसे यह पूछा गया कि 'भारतीय मजदूर संघ क्यों?' हमारे सब तर्कों की अपेक्षा तब से लेकर आज तक की घटनाओं ने इस प्रश्न का अधिक समाधानकारक उत्तर प्रस्तुत किया है। हाल के महीनों में हिंसा और आतङ्क का जो ज्वार उठा है, उसने हमारे आलोचकों का मुँह बन्द कर दिया है। बर्नपुर और जमशेदपुर में क्रमशः ६ करोड़ और १४ करोड़ रुपयों की राष्ट्रीय हानि हुई है। इस चुनौती का सामना करने में इण्टुक अत्यन्त दुर्बल और भ्रष्ट साबित हुआ। अस्तु, देश श्रमिक-क्षेत्र में एकमात्र भारतीय मजदूर संघ ही प्रभावी राष्ट्रीय शक्ति का प्रतिनिधत्व करता है।

## शुद्ध दृष्टिकोण

उद्योग और राष्ट्र के प्रति श्रमिकों का क्या रुख होना चाहिए ? इससे एक और भी मौलिक प्रश्न पैदा होता है। हमारी सामाजिक

और आर्थिक व्यवस्था का क्या लक्ष्य होना चाहिये? रामराज्य, कल्याण-कारी राज्य, कोआपरेटिव कामनवेल्थ या सोशलिस्टिक पैटर्न आफ़ सोसाइटी ? शब्द-प्रयोग को अलग रखकर यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज-व्यवस्था का एक ही सार्वजनिक आदर्श रहा है अर्थात् सम्पूर्ण समाज का पूर्ण हित। वर्गों का अस्तित्व हमें अमान्य है। हमें तथ्य विदित है कि आमदनी में विविध स्तर हो गये हैं और हम इस सम्बन्ध के पाप तुल्य विभेद को समाप्त करने का निश्चय कर चुके हैं। किन्तु, यह सोचना गलत होगा कि 'Haves' और 'have nots' रूपी दो वर्गों में समूचा राष्ट्र बँटा हुआ है। 'Have' कौन हैं ? अथवा क्या यह नियोजक employer और नियुक्त employee के मध्य का संघर्ष है ? नियोजक employer कौन है ? अपने औद्योगिक संस्थान की दृष्टि से मैं एक नियुक्त employee हूं किन्तु, अपने पारिवारिक नौकर की दृष्टि से मैं एक नियोजक employer हूं। दो गुटों की धारणा सर्वथा काल्पनिक है। सम्पूर्ण राष्ट्र एक इकाई होता है। राष्ट्र के सभी व्यक्ति राष्ट्र रूपी एक ही अङ्गी के विविध अङ्ग हैं। अतः उनके हितों में परस्पर संघर्ष नहीं हो सकता। स्वभावतः अनिवार्यरूपेण वे एक दूसरे के पूरक हैं। इस तथ्य को समझने में असफल होने वाला कोई भी व्यक्ति अपने में राष्ट्र-प्रेम की कमी को सूचित करता है। देशभक्त मजदूर अपने अधिकारों के साथ अपने उत्तरदायित्व को भी जानता है। फलस्वरूप वह अनुशासित और कर्त्तव्यनिष्ठ होता है। देशभक्त नियोजक employer का ध्येय होता है 'स्वार्थ से पूर्व कर्त्तव्य (Service before self) उनका उद्देश्य राष्ट्रीय समृद्धि होता है न कि व्यक्तिगत त्याग। देशभक्त उपभोक्ता औद्योगिक शान्ति और कल्याण के प्रति सर्वदा सजग रहता है। राष्ट्रीय हित में औद्योगिक विवाद का हल प्राप्त करने के लिये अपने प्रभाव का उपयोग करने में वह सदा तत्पर रहता है। औद्योगिक सम्बन्धों के नियमन में देश-भक्त सरकार सदा न्यायपरायण और शुद्ध रहती है।

राष्ट्रीयता और कृत्रिम रूप से विकसित वर्ग चेतना का साथ नहीं रह सकता। भारतीय-मजदूर-संघ एक राष्ट्रीय श्रमिक-संगठन है। हमें वर्त्तमान ढाँचे में ही काम करना है। वर्त्तमान संस्थाओं से हमें तब तक अपना काम चलाना होगा जब तक भारतीय विशेषताओं से युक्त संस्थाओं वाले भारतीय समाज-व्यवस्था के पुनर्निमाण का हमारा प्रयत्न सफल नहीं हो जाता।

## सर्वांगपूर्ण दृष्टिकोण

अपने प्रारम्भ काल से ही भारतीय-मजदूर संघ औद्योगिक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के प्रति सतत सजग रहा है। उन समस्याओं से सम्बन्धित अपने विचारों को असंदिग्ध शब्दों में संघ प्रकट करता है। इसकी कार्य-पद्धति रचनात्मक ढंग की है। व्यावहारिक रूप से भा० म० संघ का यह विचार है कि निम्नलिखित साधनों को अपनाये बिना श्रमिकों का कल्याण-साधन नहीं हो सकता :—

ऐसा मानसिक वातावरण विकसित करना, जिसमें लाभ की प्रवृत्ति के स्थान पर अपना कर्त्तव्य क्रियाशील हो सके और अधिकार तथा उत्तरदायित्व में उचित समन्वय हो।

संविधान के मौलिक अधिकारों में काम प्राप्त करने के अधिकार को समाविष्ट किया जाय।

शीघ्र फलदायी लघु उद्योगों पर अधिक जोर देते हुए पञ्चवर्षीय योजना पर पुनर्विचार किया जाय।

अधिक गरीबों की दृष्टि से कर-पद्धति पर पुनर्विचार होकर यह व्यवस्था की जाय, जिससे करारोपण में न्याय और औचित्य की भावना का विश्वास हो।

मूल्य-निर्धारण, उपभोग्य पदार्थों के वितरणार्थ सहकारी समितियों की स्थापना, एवं सस्ते दाम पर श्रमिकों को अन्य आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति का प्रबन्ध होना चाहिये।

सभी प्रकार की समृद्धि के पूर्व खाद्य मोर्चे पर आत्मनिर्भरता की प्राप्ति आवश्यक है एवं इसके लिये कृषकों की प्रेरणा और वृद्धि पर आधारित एक योजना का निर्माण किया जाय।

अधिक से अधिक लोगों को काम देने की दृष्टि से कुटीर एवं लघु उद्योगों को उचित संरक्षण प्रदान किया जाय।

लघु एवं वृहद् उद्योगों में पारिश्रमिक के न्यूनतम दर को निश्चित कर उसे वैधानिक संरक्षण प्रदान किया जाय।

कृषि योग्य परती भूमि भूमिहीनों में वितरित की जाय एवं जोती जाने वाली भूमि का पुनर्वितरण इस प्रकार किया जाय जिससे अच्छी प्रकार सींची जा रही उपजाऊ भूमि की कम से कम ५ एकड़ और अधिक से अधिक १० एकड़ जमीन की उपज देने वाली भूमि कृषकों के पास रहे।

भूमि की मालगुजारी की दर आधी कर दी जाय।

राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की न्यूनतम मासिक आय १००) रु० और व्यय योग्य अधिकतम आय २०००) रु० निश्चित कर दी जाय। साथ ही यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए कि १००) रु० की न्यूनतम आय को यथासंभव २००) रु० मासिक कर दिया जायेगा ताकि न्यूनतम और अधिकतम आय में १:१० का सम्बन्ध स्थापित किया जा सके।

संगठित उद्योगों की आधारभूत मजदूरी में मध्यकालीन २५ प्रतिशत की औसत वृद्धि की जाय।

मँहगाई-भत्ते को वेतन में सम्मिलित कर दिया जाय और मजदूरी को मूल्य-स्तर से इस प्रकार सम्बन्धित किया जाय कि रहन-सहन के बढ़े हुए व्यय से पूर्ण समन्वय स्थापित हो सके।

राष्ट्रीय बोनस फार्मूले का विकास किया जाय। जब तक जीवन निर्वाह हेतु प्राप्त होने वाले पारिश्रमिक और वास्तविक पारिश्रमिक के बीच की खाईं पट न जाय तब तक बोनस को deffered wage किश्तवार पारिश्रमिक समझा जाय एवं खाईं दूर हो जाने के पश्चात् इस

बोनस को लाभ का हिस्सा माना जाय। पब्लिक सेक्टर में भी बोनस दिया जाय।

पारिश्रमिक सम्बन्धी समस्त समस्याओं के हल करने, जीवन-निर्वाहार्थ आवश्यक मूल्य को दृष्टि में रखते हुये प्रदेश एवं उद्योग के क्रमानुसार समय-समय पर पारिश्रमिक सम्बन्धी उपयुक्त सुझावों को देने एवं राष्ट्रीय परिभाषानुसार पारिश्रमिक-व्यवस्था के विकास एवं स्थैर्य के लिये एक स्थायी राष्ट्रीय वेतन आयोग का निर्माण किया जाय।

विदेशी कारखानों का भारतीयकरण किया जाय एवं विदेशी एकाधिकारी संस्थानों के राष्ट्र विरोधी कार्य-कलाप को रोका जाय।

तथाकथित 'rationalisation' के बहाने मजदूरों की बचत करने वाले उपायों को प्रतिबन्धित किया जाय एवं 'बिना काम दिये छँटनी न करने' का अत्युत्तम नियम अपनाया जाय।

श्रमिकों के प्रतिनिधियों के परामर्श से कार्य-भार का निर्धारण हो और उन्हें इन निर्णयों के उचित प्रकार से लागू होने का निरीक्षण करने की सुविधा प्रदान की जाय।

सभी उद्योगों में ८ घंटे कार्यकाय का कठोरतापूर्वक पालन किया जाय। खतरनाक कार्यों के पारिश्रमिक में कोई कमी किये वगैर कार्यकाल में १ घंटे की कमी की जाय। दैनिक मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिकों को भी सप्ताह में सवैतनिक एक दिन के अवकाश की व्यवस्था की जाय।

त्यौहारों पर सवैतनिक छुट्टी की व्यवस्था की जाय।

वर्त्तमान जीवन-निर्वाह मूल्यों के अनुसार matenity benefit की दर पर पुनर्विचार हो।

सरकारी-सेवा के आचरण-नियमों में परिवर्त्तन किया जाय।

'Employees State Insurance' की योजना का लाभ श्रमिको के कुटुम्बियों तक विस्तृत किया जाय। इस योजना में श्रमिकों

के देय में इतनी छूट मिलनी चाहिए जिससे उनका आर्थिक भार-नियोजक employer और राज्य में विभाजित हो जाय। इसमें service system सेवा-व्यवस्था के बदले पैनल व्यवस्था panel system लागू किया तथा योजना की कार्यविधि को सरल किया जाय। T. B. (क्षय) इत्यादि रोगों की विशेष चिकित्सा की वयवस्था हो तथा E. S. I. का चिकित्सा भवन प्रत्येक औद्योगिक क्षेत्र में रहे।

औद्योगिक रोगों एवं दुर्घटनाओं से अधिकतम सुरक्षा की व्यवस्था रहे तथा व्यवसायिक-संघों को 'Mining Regulation'के अन्तर्गत संशोधित सुरक्षा-नियमों के कठोरतापूर्वक पालित होने के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त हो।

पेन्शन, ग्रैचुइटी एवं बेकारी भत्ता इत्यादि के साथ सामाजिक सुरक्षा हेतु एक सर्वाङ्गपूर्ण योजना का विकास किया जाय। वाणिज्यीय संस्थाओं में भी प्राविडेण्ट फण्ड की योजना के लाभ का विस्तार किया जाय।

सभी औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों की ऐसी सहकारी समितियों का निर्माण किया जाय जिसमें सीधे तौर पर सरकारी सहायता प्राप्त हो।

मेल-मिलाप और न्याय-प्राप्ति की व्यवस्था एवं तन्त्र का पुनर्निर्माण इस प्रकार से किया जाय कि कम खर्चे में कार्य शीघ्र हो सके ताकि बिलम्ब के कारण न्याय की हार न हो सके।

श्रमिकों के सहभागीदारी के सिद्धान्त का प्रचलन किया जाय एवं उन्हें अपनी औद्योगिक इकाई में हिस्सेदार की तरह प्रबन्ध तथा लाभ में भाग लेने का अवसर मिले।

सभी पंजीकृत ट्रेड-यूनियनों को वस्तुतः इस बात की मान्यता रहे। प्रत्येक श्रमिक अपनी रुचि के अनुकूल यूनियन के द्वारा समस्त कार्य-वाहियों में अपना प्रतिनिधित्व कर सके।

प्राविडेण्ट फण्ड, अनुशासन एवं आचरण-संहिता, श्रमिकों के प्रबन्ध में साझेदारी एवं उनके शिक्षा विषयक कार्यक्रम, भविष्य में

मिल-बन्दी निवारक रचनात्मक दृष्टिकोण श्रमिकों को काम चलाऊ धन देने की दृष्टि से इण्डस्ट्रियल रिलीफ-फण्ड के निर्माण एवं मिल-बन्दी के समय अपनी इकाइयों के सञ्चालनार्थ सहकारी समितियों की स्थापना विषयक नैनीताल-कान्फ्रेन्स के निर्णयों को लागू किया जाय।

## सूती मिलों की बन्दी (Textile closing)

बन्दी का भय आजकल की सबसे बड़ी समस्या है। क्या सरकारी सहायता से श्रमिक-सहकारी समितियों द्वारा ऐसी इकाइयों का प्रबन्ध करना संभव होगा ? मेरे विचार से अधिकांश अवस्थाओं में यह संभव होगा। भारतीय-मजदूर-संघ ने उज्जैन के नाज़र-अली मिल्स में ऐसे प्रयोग के लिये अपनी सेवाएँ अर्पित की हैं। सम्बन्धित अधिकारियों से मेरा अनुरोध है कि इस दिशा में भारतीय मजदूर-संघ को जनता की सेवा करने का मौका और सुविधा प्रदान करे

## लङ्का के भारतीय

लङ्का के भारतीयों की दुःखद अवस्था अब तक एक समस्या बनी हुई है और उसकी ओर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है। उस लघु द्वीप की वर्त्तमान समृद्धि भारतीय मजदूरों के अथक प्रयासों का परिणाम है। सीलोन में हमारा राष्ट्रीय सम्मान दाँव पर लगा हुआ है। भारतीय मजदूर संघ भारतीय सरकार के सरकारी स्तर पर हमसे अभिन्न इन भारतीयों की समस्या को हल करने के लिये जोरदार कार्यवाही करने का अनुरोध करता है। भा० म० सं० ने महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर जनमत-संगठित कर सरकार पर दबाव डालने का दृढ़ निश्चय किया है। सभी जन-नेताओं से हम इस राष्ट्रीय प्रश्न पर अपने राजनीतिक झुकावों का ख्याल छोड़कर एक साथ खड़े होने की प्रार्थना करते हैं।

## राष्ट्रीय श्रम-दिवस

हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सभी कार्य-क्षेत्रों के सदृश श्रमिक-क्षेत्र में अपनी राष्ट्रीय परम्पराओं का आदर करें और उन्हें कायम रक्खें। भारत के राष्ट्रीय श्रम दिवस को मनाना एक ऐसी ही शानदार परम्परा है। यह अत्यन्त विचित्र बात है कि जब लाखों भारतीय श्रमिक आज भी श्रद्धापूर्वक इस दिवस को मनाते हैं तो आँग्ल शिक्षा-दीक्षा प्राप्त आधुनिक ट्रेड यूनियनों के नेता इसके महत्व से अपरिचित से प्रतीत होते हैं। क्या हम एक नवजात राष्ट्र हैं? क्या भारत में श्रमिक नहीं थे? क्या अपनी अनोखी स्थिति के अनुकूल परम्पराओं और संस्थाओं को विकसित करने के लिये हमारे पास पर्याप्त बुद्धि का अभाव था? क्या भारतीय प्रतिभा के लिये श्रम-दिवस का विचार सर्वथा अकल्पनीय था? अनेक औद्योगिक बुराईयों में ग्रस्त पाश्चात्य लोगों से भव्य अतीत रखने वाले इस राष्ट्र को श्रम दिवस का उधार माँगने की सम्मति क्यों दी जाती है? क्या पश्चिम के मई-दिवस को वरीयता देने के पूर्व हमने अपने राष्ट्रीय दिवस के महत्व एवं उसके लागू करने का विचार किया था? अपने कतिपय नेताओं के आत्मविस्मरण के कारण हमें कई पाश्चात्य रीति-रिवाजों को मानना पड़ा है और मई दिवस भी उनमें से एक है। हमें अपने आपे में आना चाहिए। पश्चिम के अन्धानुकरण की वृत्ति उत्पन्न करने वाली हीनता की भावना से हमें अपने मस्तिष्क को मुक्त करना चाहिये। आगे हमलोग ट्रेड-यूनियनों के क्षेत्र में अपने राष्ट्रीय श्रम दिवस के रूप में विश्वकर्मा दिवस को पुनः लागू करें।

## भा० म० संघ और ट्रेड-यूनियन ऐक्य

हमारे देश में प्रत्येक व्यक्ति 'एक उद्योग में एक यूनियन' की सहानुभूति प्रकट करता है। किन्तु जैसा वी० वी० गिरि चाहते हैं सभी लोग उतने सात्विक या उत्साही नहीं प्रतीत होते। भा० म० संघ

इस सिद्धान्त का स्वागत करता है किन्तु साथ ही यह अनुभव करता है कि इसको तब तक व्यावहारिक रूप नहीं मिल सकता जब तक ट्रेड यूनियनों के क्षेत्र में राजनीतिक स्वार्थों का बोलबाला बना हुआ है।

ट्रेड यूनियनों को पूर्णतया अराजनीतिक होना चाहिये। अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाने में किसी भी राजनीतिक दल को ट्रेड यूनियनों का उपयोग न करना चाहिए। अभाग्य वश आज परिस्थिति कुछ दूसरी ही है। हमें यथार्थवादी होना चाहिये। ठोस यथार्थवाद के बदले इच्छासूचक विचारमात्र व्यर्थ है। यह एक दुःखद बात होगी कि हम देशभक्त श्रमिकों से यह कहें कि अन्य राष्ट्र की भक्ति करने वाले राष्ट्र विरोधी नेताओं को अपनी यूनियनों में स्थान न दें। क्या हमें देशद्रोहियों को इस बात का अवसर देना चाहिये कि वे श्रमिकों की सहायता से किसी विदेशी शक्ति के पक्ष में कार्य करने वाले पंचमांगियों का निर्माण कर सकें ? इन तत्वों द्वारा हाल में अर्पित किये गए आदर भाव के बावजूद वर्त्तमान परिस्थिति में समस्त राष्ट्रीय यूनियनों की एकता ही इसका एकमात्र विकल्प प्रतीत होता है।

## नैनीताल से जमशेदपुर

श्री गुलजारी लाल नन्दा ने नैनीताल में हुए इण्डियन लेबर कान्फ्रेंस के १६वें अधिवेशन की सफलता पर अत्यन्त सन्तोष प्रगट किया है। यह सफलता तो थी किन्तु श्री नन्दा को कुछ कटुता के साथ कम्युनिस्ट तरीके अपनाने पड़े। जनता की स्मृति अधिक दिनों तक नहीं टिकती, परन्तु नैनीताल और जमशेदपुर के बीच का काल अत्यल्प ही है। इस कान्फ्रेन्स के विषय में श्री नन्दा ने जो बयान दिया है वह उनके अति आशावाद के विरुद्ध है। इतिहास को यह न कहना पड़े "My name is Gulzari Lal Nanda O self complacence !" "अर्थात् 'ओ आत्मतुष्टि ! तेरा नाम गुलजारीलाल नन्दा है।"

यह एक खेद की बात है कि सरकार आँख बन्द करके निर्दयता-पूर्वक देश की कतिपय सर्वाधिक देशानुरागी शक्तियों को दबाने की कोशिश कर रही, है और इस प्रकार विदेशी शक्तियों के एजेण्टों के राष्ट्र विरोधी पक्षों को प्रोत्साहित कर रही है। दुर्बलता को उदारता का नाम देने से कोई लाभ नहीं होगा।

## देशभक्तों से अपील

मैं सरकार तथा जनता को इस बात से आगाह कर देना चाहता हूं कि किसी भी दिशा में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के बढ़ने से भारतीय स्वतन्त्रता और प्रमुखत्ता के लिये प्रत्यक्ष खतरा उत्पन्न होगा। विषयों को घुमा फिराकर कहना व्यर्थ है। हमें स्पष्टवादी होना चाहिये। अतः मैं श्रमिक क्षेत्र के सभी देश-भक्तों से अविलम्ब राष्ट्रीय ट्रेड यूनियनों के संयुक्त मंच पर एकत्रित होने की अपील करता हूं ताकि रूसी साम्राज्यवाद की भारतीय शाखा का वैधानिक रूप से उन्मूलन किया जा सके। मुझे यकीन है कि निकट भविष्य में कम्युनिज्म अपने ही भार से टूटेगा और हमारी पवित्र भारत माता का विजयी स्वरूप प्रकट होगा।

## सोशल साइन्सेज़ एसोसिएशन के भाषण का सारांश

२३ जनवरी १९५८ को एस० बी० सिटी कालेज, नागपुर में हुए सोशल साइन्सेज एसोसिएशन में ठेंगड़ी जी द्वारा दिए गए भाषण का सारांश :—

१. हिन्दुओं के सामाजिक-आर्थिक-व्यवस्था रूपी वस्त्र में ग्रामस्तर से लेकर ऊपर तक स्वशासित औद्योगिक परिवारों का ताना एवं ग्राम-पञ्चायत की आधारभूत इकाई मानकर चलने वाले प्रादेशिक शासन का बाना लगा हुआ है।

२. कम्युनिज्म और आत्मा के बीच समाजवाद एक कमजोर समझौते के रूप में उपस्थित हुआ है। पर्याप्त भौतिकवादी न होने से जो लोग पूर्णतया कम्युनिस्ट नहीं हो सके हैं, किन्तु साथ ही जो ऐसे आध्यात्मिक भी नहीं हैं कि सर्वव्यापक सत्ता का साक्षात्कार एवं समर्थन कर सकें, उन लोगों ने ही अपनी दुर्बलता के कारण मार्क्सवाद की कुछ आधारभूत धारणाओं को अपना लिया है एवं अब अपने सत्स्वभाव के कारण ही अपने कार्यों के स्वाभाविक परिणाम से बचना चाहते हैं। ऐसे लोग एक साथ दो नावों पर चढ़ने की कोशिश कर रहे हैं।

३. हिन्दुओं का यह विश्वास है कि मनुष्य के जन्म के साथ ही उसकी रोजी पैदा होती है। अर्थात् अपनी नियमित रोजी के बिना किसी का जन्म ही नहीं हो सकता। अपने गुण-कर्म के अनुसार ही मनुष्य को उसकी रोजी मिलनी चाहिए न कि किसी कार्यालय में होने वाली आकस्मिक रिक्तता के अनुसार। वर्ण धर्म की यह विशेषता है कि इसमें गुणानुसार कार्य की व्यवस्था होने से प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके कार्य का निश्चय पहले से रहता है जिसमें लगने से उसकी विशिष्ट योग्यता का पूर्ण विकास होता है एवं प्रत्येक कार्य के लिए उसको पूर्ण करने योग्य आदमियों की भी निश्चित व्यवस्था होती है। एकमात्र यही ऐसा रास्ता है जिससे अपने ढंग पर पूर्ण विकास करते हुए व्यक्ति को अपने योग्य सामाजिक स्थिति प्राप्त करने का निश्चय होता है एवं इसके द्वारा समाज को व्यक्ति की सर्वोत्तम देन प्राप्त होती है। इस दृष्टि से हिन्दुओं ने समाज की विविध आवश्यकताओं को देश में प्राप्य समस्त योग्यताओं एवं सामर्थ्यों से परस्परान्वित किया था।

# हमारी मुख्य विशेषताएँ

१. राष्ट्रीय दृष्टिकोण ।

२. रचनात्मक प्रवृत्ति ।

३. आदर्शवाद, न कि अवसरवाद ।

४. वैधानिकता और जनतन्त्रात्मक ट्रेड यूनियनिज्म का अमुगमन ।

५. पूर्णतया अराजनीतिक स्वरूप ।

६. मत, पन्थ एवं जाति का बिना विचार किए समस्त भारतीयों का समावेश ।

७. वर्ग-संघर्ष की धारणा को असत्य मानना ।

८. श्रमिक हित को राष्ट्रिय हित से एकरूप मानना ।

९. पूँजीवाद और समष्टिवाद से पूर्ण अलग रहने का दृढ़ निश्चय ।

१०. 'श्रमिक साझेदारी' का आग्रह, अधिकार तथा कर्त्तव्यों में समन्वय ।

११. 'अधिकतम उत्पादन के साथ उपयुक्त वितरण' का समर्थन।

१२. समझौता-वार्त्ता, मध्यस्थता एवं पञ्च निर्णय आदि विवाद-निर्णय के समस्त उपायों के असफल होने पर ही अन्तिम-शस्त्र के रूप में हड़ताल का आश्रयण ।

१३. 'सतत हड़ताल' एवं 'हड़ताल को सर्वथा अभाव' इन दोनों चरम सीमाओं के बीच 'अत्यावश्यक होने पर हड़ताल' का मध्यम मार्ग अपनाना ।

१४. समस्त सम्पत्तियों का एकमात्र स्वामी ईश्वर को ही मानने की धारणा ।

१५. पाश्चात्य विचारों, शब्दावली एवं आदर्शों को अपनाने की बौद्धिक दासता से मुक्ति ।

१६. भारतीय समाज-व्यवस्था के वैज्ञानिक स्वरूप एवं अन्तिम विजय का पूर्ण विश्वास ।

१७. इस बात का दृढ़ विश्वास है कि हमारे राष्ट्र की प्रतिभा में वह क्षमता है जिससे आवश्यक सामाजिक व्यवस्थाओं एवं दार्शनिक फार्मूलों का विकास किया जा सकता है ।

१८. अपने समाज को भारतीय ढांचे के अनुसार वैज्ञानिक आधार पर साँघिक समुदायों के रूप में एक वर्गहीन स्वशासित औद्योगिक जाति बनाने की आकांक्षा ।

लोहिताश्व प्रिन्टर्स, ऐशबाग रोड, लखनऊ ।